RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC-II/CPM/09/KPHO/2014-17
प्रधान डाकघर कानपुर–डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/–

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

अप्रैल–2017 | वर्ष – 09 | अंक : 03 | मूल्य : 5/–

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (इं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश : सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741
सहायक ब्यूरो चीफ (उ.प्र.) : चन्द्रिका प्रसाद ओमर, 49ए/52–बी, ख्यौरा, आजाद नगर, कानपुर, मो.: 9305256450
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी–5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल :
पुष्पेन्द्र गौतम हिन्दुस्तानी, मल्हौसी, औरेया, उ.प्र. मो.: 9456207206
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम–सराय, औरंगाबाद, पो.–बहादुरगढ़,जिला–झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.–रामटौरिया, जिला–छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य :
दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट–III, बदरपुर, नई दिल्ली–44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.–1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला–अलवर–301001, मो. : 09887512360, 0144–3201516
चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला–अलवर, मो.–09829855349
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.–08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला–महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें – भारतीय स्टेट बैंक, शाखा–नवीन मार्केट, कानपुर खाता सं.–33496621020 • IFSC CODE-SBIN005307

हिन्दुत्व, हिन्दुवाद एवं हिन्दुराज का पुनरुत्थान

महाड़ के सत्याग्रह की योजना को गैर–ब्राह्मण आन्दोलन के जेघे तथा जवलकर जैसे शीर्षस्थ नेताओं ने इस शर्त पर समर्थन दिया कि प्रस्तुत सत्याग्रह से ब्राह्मणों को बिलकुल अलग रखा जाए। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने साफ–साफ जवाब दिया कि यह मानना कि सभी ब्राह्मण दलितों के विरोधी हैं, उचित नहीं होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दरअसल उनका विरोध ब्राह्मणवाद की उस अवधारणा से है, जो लोगों को ऊंची–नीची जाति में बांटती है और शुचिता तथा प्रदूषण के आधार पर उन्हें इंसान मानने से इनकार करती है। महाड़ सत्याग्रह पानी प्राप्त करने से प्राकृतिक, सामाजिक एवं नागरिक अधिकार को स्थापित करने के लिए किया गया था, किन्तु उसी समय उस अमानवीय आदेशों–निर्देशों की पुस्तक **मनुस्मृति** को नकारते हुए उसको नष्ट करने के लिए बहिष्कृत हितकारिणी की भरी सभा में उपस्थित सैकड़ों लोगों के समक्ष एक न्यायप्रिय ब्राह्मण बाबा साहेब के सहयोगी **सहस्त्रबुद्धे** ने जलाया था। बाबा साहेब के जीवन में कई ऐसे जन्मजात ब्राह्मण बुद्धिमान पुरूष आए, जिनमें समतामूलक मानवीय संवेदनाओं का जीवन संचार था। इसी कारण बाबा साहेब का मत था कि ब्राह्मण समुदाय में जन्म लेने से सभी ब्राह्मण अन्यायी अत्याचारी नहीं हो जाते, बल्कि ब्राह्मणवाद की शिक्षाओं और संस्कारों से आपूर्त तथा मानवीय स्वार्थ भावना एवं अभिमान तथा उच्चता बनाए रखने की भावना से ग्रसित होने वाले लोग ही उन अनाचारों और अपराधों का समर्थन करते हैं, जो अपराध की श्रेणी में आते हैं और कोई भी सभ्य समाज उनको मान्यता प्रदान नहीं कर सकता।

''अछूतों को हिन्दू समाज में मिला लेने से हिन्दुओं को कोई लाभ तो नहीं ही था, उल्टे हानि की सम्भावना अधिक थी। ये हानियां कई प्रकार की थी। इनमें से कुछ का दिग्दर्शन नीचे लिखी पंक्तियों में कीजिए –

अछूत समुदाय विलीन हो जाने से 24 करोड़ (सन् 1931) हिन्दुओं को 6 करोड़ अनुचरों की सेवा से वंचित हो जाना पड़ता। अछूतों को हिन्दू हमेशा से अपनी मिल्कियत और जन्मजात सेवक समझते आए हैं, जिनसे वे न केवल सेवा लेते रहे हैं वरन् जैसे बड़े आदमियों के बड़प्पन की एक निशानी। उनके आसपास सेवकों का रहना समझा जाता है, उसी प्रकार अछूतों की उपस्थिति से हिन्दू अपने में बड़प्पन अनुभव करते रहे हैं।

अछूत समाज से हिन्दुओं को दूसरा लाभ यह रहा है कि कठोर श्रम के कामों में इन्हें बेगार में अथवा नाम मात्र की मजदूरी पर ही लगाया जा सकता है, क्योंकि इनमें आत्मरक्षा की शक्ति बिलकुल नहीं है। इस दृष्टि से भारतीय अछूतों की स्थिति पश्चिमी दासों से भी कहीं बदतर है। दास तो खरीद कर प्राप्त किए जाते थे और उनकी उपलब्धि के अनुसार उनका बाजार भाव बढ़ता–घटता रहता था। अतः दासों का मालिक उन्हें जीवित रखने तथा काम करने लायक रखने की चिन्ता अवश्य करता था, परन्तु भारत के अछूत तो ऐसे दास है, जिनकी फसल गांव में ही बिना कुछ प्रयत्न किए ही बहुतायत में पैदा होती है और उन्हें प्राप्त करने के लिए कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता। अतः जीवनयापन योग्य मजदूरी देने की क्या चिन्ता? एक न सही दूसरा, दूसरा न सही तीसरा अछूत उन्हें सेवा के लिए मिल ही जाता है। अछूत भी सेवा कार्य के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकते। अतः वे भी विवश होकर सेवा करते ही रहते हैं। संक्षेप में अछूत एक ऐसी दास प्रथा है, जिसमें मालिक के अधिकार ही अधिकार हैं कर्त्तव्य एक भी नहीं है और इस अमानवीय प्रणाली के विरूद्ध न कोई जनमत है न कोई निष्पक्ष एजेन्सी, जिसके समक्ष न्याय की अपील की जा सके। अछूतों से एक तीसरी सुविधा यह है कि इन्हें गन्दे कामों को करने के लिए विवश किया जा सकता है। जिन कामों को दूसरा कोई करना पसन्द नहीं करता, वे अछूतों से कराए जाते हैं।

अछूत समुदाय बने रहने का हिन्दुओं को एक आर्थिक लाभ यह भी है कि छः करोड़ को छोटी–छोटी नौकरियों से सन्तुष्ट किया जा सकता है और इनके हिस्से की बड़ी–बड़ी नौकरियों का लाभ 24 करोड़ हिन्दुओं को पहुंचाया जा सकता है। धार्मिक प्रतिबन्ध लगाकर इन्हें ऊंची नौकरियों में आने से रोका जा सकता है। इसके अलावा आवश्यकता के समय अछूतों का कवच भली–भांति प्रयोग किया जा सकता है। अर्थात् यदि नौकरियों की बाढ़ है, तो पहले हिन्दुओं को खपाने के बाद बचने पर अछूत भी ले लिए जाते हैं और अगर छंटनी होनी होती है, तो हिन्दुओं को बचाने के लिए सबसे पहले अछूतों की ही छंटनी कर दी जाती है।

इस प्रकार आसानी से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अछूत समुदाय समाप्त हो जाने से हिन्दुओं को प्राप्त अनेक सुविधाएं समाप्त हो जाएंगी।''

22 जून, 1946 को अछूतों की सभा में बोलते हुए हमारे उद्धारक बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने कहा था कि असली इन्कलाब तब होगा जब ये जवाहर– गांधी– पटेल – बोस–पंत भंगियों के मोहल्ले में असली भंगी बनकर रहेंगे और हम भंगी इनके मुहल्लों में रहकर इन पर हुकूमत करेंगे। तब सच्चा इन्कलाब जिन्दा होगा और 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा सार्थक होगा। अन्यथा इन्कलाब–जिन्दाबाद का नारा निरा ढोंग है।

फरवरी–मार्च 1946 में चुनाव हुए। कांग्रेस ने हिन्दू–सीटों पर ही नहीं बल्कि अछूतों की सीटों पर भी विजय पाई। गांधी एण्ड कम्पनी ने जो वायदे किये थे, उन्हें धरती में दफना दिया गया। अखिल भारतीय शेडयूल्ड कास्ट फेडरेशन का नाम सभी की जबान पर था, लेकिन विजय का सेहरा गांधी एण्ड कम्पनी वालों के सिर पर बांधा गया। यह थी पूना–पैक्ट की देन।

बाबा साहेब फिर चिंतित हुए। उन्होंने 20 जून, 1946 को 22 पृथ्वीराज रोड, नई दिल्ली के अपने निवास–स्थान पर एकत्रित भीड़ के सामने कहा–''मुझे ऐसा मालूम पड़ता है, जब भी हम अछूतोद्धार के लिए रचनात्मक कार्यों पर चलना प्रारम्भ करते हैं, तभी बामण–वादी हमें व्यर्थ बनाने के लिए हर प्रकार के प्रयत्न करते हैं। हमने श्रम–मंत्री होने के नाते जो कुछ किया, उसे आमूल नष्ट करने में न केवल बामणवादी ही कटिबद्ध है बल्कि अंग्रेज भी उन्हीं का साथ दे रहे हैं।''

स्टैफर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में ब्रिटिश पार्लियामेंट का एक डेलीगेशन भारत आया। यह तीन आदमियों का

प्रतिनिधि–मंडल था। इस प्रतिनिधि–मंडल को दिल्ली में 3 फरवरी, 1946 को, बाबा साहेब ने एक स्मृति–पत्र दिया। इसमें उन्होंने कहा कि भारतीय अछूतों के अधिकारों के सम्बन्ध में बर्तानिया भारत छोड़ने से पहले अछूतों के नेताओं के साथ वार्तालाप करे।

इसी तारीख को दिवंगत रामनारायण यादवेन्दु आगरा के सभापतित्व में दिल्ली के गांधी–ग्राउन्ड में एक विशाल सभी हुई। इस विशाल सभा के आयोजक सर्वमान्य श्ंकरानन्द शास्त्री, टी.बी.भोसले, दिवंगत तोताराम प्रधान दिल्ली शेड्लूल्ड कास्ट फैडरेशन तथा चौ. देवीदास आदि थे। इस विशाल सभा में डॉ. सोलंकी का भी भाषण हुआ। इस सभा में हजारों अछूतों के सामने बाबासाहेब ने घोषणा की कि वे तब तक आराम से नहीं बैठेंगे, जब तक अछूतों को मानवता के अधिकार न दिला दें।

बाबा साहेब ने अपने भाषण में साफ शब्दों में कहा–''भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए मैंने सन् 1930 में राउन्ड टेबल कान्फ्रेन्स में आवाज उठाई थी। मुझे भारत की आजादी सबसे ज्यादा प्यारी है। अंग्रेजों को चाहिए कि भारत छोड़ते समय वहां की शासन सत्ता को जाति–पांति वालों के हाथों में देकर न जायं। ऐसा न हुआ तो मैं सारे भारत में अछूतों का सत्याग्रह–आन्दोलन प्रारम्भ करूंगा।''

सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने जो रिपोर्ट ब्रिटिश पार्लियामेंट को दी, उसमें अछूतों के मानवीय अधिकारों के साथ उपहास किया था। बाबा साहेब ने अछूतों के अधिकारों की रक्षा के लिए 15 जुलाई, 1946 को पूना में, विधान–सभा के सामने, प्रदर्शन प्रारम्भ किये, इसमें हजारों सत्याग्रही जेल गए।

यह आन्दोलन न केवल अंग्रेजों के विरूद्ध था, बल्कि बामणवादी कांग्रेस के आचरण के भी विरूद्ध था। कांग्रेस ने अछूतों की ओर से बोलने का दावा किया। बाबा साहेब आंबेडकर जैसे महान विद्वान के मुकाबले में कांग्रेस वाले सदैव किसी–न–किसी अछूत गोबरगणेश को खड़ा करके संसार को दिखाते रहे हैं कि अछूतों के नेता तो कांग्रेस और गांधी हैं। इसका भंडाफोड़ करना था। अंग्रेज दूसरे महायुद्ध में नष्ट–भ्रष्ट होने के कारण भारत से भागना चाहता था। लेकिन जाने से पूर्व वह देश का शासन–सूत्र उन लोगों के हाथों में देना चाहता था, जो अछूतों के मानवीय अधिकारों के पैदाइशी दुश्मन थे।

इस सत्याग्रह–आन्दोलन ने कुछ समझदार व्यक्तियों की आंखें खोलीं। इसी समय नागपुर, कानपुर और लखनऊ में भी सत्याग्रह प्रारम्भ किया गया। लखनऊ के सत्याग्रह का श्रेय कानपुर के मा. तिलक चन्द कुरील को है, यह इन्हीं की तपस्या का परिणाम था कि उस प्रदेश के सभी जिलों से तीन हजार के करीब सत्याग्रही जेल में गए। उस समय दिवंगत गोविन्दवल्लभ पंत उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री होते थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जब सरकारी नौकरियों में जाति प्रमाणपत्र दाखिल करने से कुछ पदों पर दलितों को नियुक्तियां मिलने लगीं और सन् 1977–78 तक अन्य अर्धसरकारी संस्थानों में भी प्रवेश मिलने से कुछ संख्या में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लोगों की आर्थिक, सामाजिक प्रगति होना प्रारम्भ हुआ। किन्तु यह दलित वर्ग जो अपनी दशा में थोड़ी सी प्रगति कर पाया था, वह भूल ही गया कि इस प्रगति की सीढ़ी पर चढ़ाने के लिए उसके पूर्वजों ने क्या–क्या अमानवीय यातनाओं को सहन किया, मुकाबला किया, तब जाकर कुछ सफलता पाई। वह अपने व्यक्तिगत परिवार के हितों के अतिरिक्त इस वास्तविकता से भी परिचित होना नहीं चाह रहा था कि उसके मालिक सवर्ण ब्राह्मणवादी मानसिकता की प्रतिक्रान्तिकारी शक्तियां लगातार उसके हितों को नकारने का षड्यन्त्र प्रत्येक स्तर पर कर रही हैं। अनेक बार ऐसे पढ़े–लिखे जागरूक दलित अफसरों से वार्ता के दौरान सुनने को मिला कि अब वे दिन लद गए जब **गधे पंजीरी खाया करते थे**। अर्थात् पुनः वह व्यवस्था नहीं लाई या थोपी जा सकती है, जो मनुस्मृति के उपदेशों पर आधारित थी। वे भोले लोग एक सामाजिक, राजनैतिक सत्य से परिचित नहीं होना चाहते थे कि **क्रिया की प्रतिक्रिया** और **क्रान्ति की प्रतिक्रान्ति** की कोशिश अनवरत चलती रहती है। क्रिया–प्रतिक्रिया और क्रान्ति–प्रतिक्रान्ति का अन्तर जान लेना आवश्यक है। क्रिया की प्रतिक्रिया एक प्राकृतिक व नैसर्गिक सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त भौतिकी या रसायन शास्त्र अथवा प्रकृति में होने वाले परिवर्तन में अनिवार्य रूप से परिलक्षित होती है। किन्तु क्रान्ति–प्रतिक्रान्ति का सीधा सम्बन्ध मानव समाज में मानव द्वारा घटने वाली घटनाओं तथा उनके प्रभाव दुष्प्रभाव के प्रति आक्रोश को व्यापक जनहित में नियमित करने वाले परिवर्तन धर्मी उपक्रम से हैं। इस प्रक्रिया में जो मानव समूह दूसरे मानव समूह पर अनाधिकारिक चेष्टाओं द्वारा आधिपत्य स्थापित कर अनेक प्रकार से शोषण करता है अैर उसके परिणामों को भोगने का अभ्यस्त हो जाता है, वह उस शोषणकारी व्यवहार को रीति–रिवाज सामाजिक धार्मिक नियम और यहां तक कि उनको राजकीय नियमों के रूप में प्रस्थापित कर देता है, जिससे वह स्वयं आजीवन सुख भोग विलास करता रहे तथा उसकी आने वाली पीढ़ियों के लिए भी रास्ता सुगम बना रहे।

भारत में ब्राह्मणवादी व्यवस्था भी कभी प्रतिक्रान्ति का ही परिणाम थी, जो कालान्तर में राजाश्रय प्राप्त करके इतनी सशक्त हो गई थी कि राजा स्वयं उसका शिकार होता था, किन्तु अनन्य भोगों के लालच के कारण तथा प्रजा द्वारा कभी विद्राह की भावना प्रदर्शित न करने के कारण ब्राह्मणों द्वारा, ब्राह्मणों के लिए ब्राह्मणों की स्थापित व्यवस्था ही चलती रही। यह व्यवस्था भारत पर बाहरी आक्रमणों तथा उनके आक्रान्ताओं द्वारा भी ध्वस्त नहीं की जा सकी। इसका कारण था कि आक्रान्ता की मानसिकता विजय, शासन तथा धन–प्राप्ति होती थी। यह तीनों चीजें उन्हें आसानी से मिल जाती थीं। आक्रमणकारियों से भारतीय शासक प्रायः सन्धि कर लेते थे और सन्धि के करारनामे में उनका आधिपत्य स्वीकार्य, नजराने में हीरे–जवाहरात, हाथी–घोड़े तथा सुन्दर स्त्रियां दी जाती थीं। सांसारिक मनुष्य को इसके अतिरिक्त और क्या चाहिए था? किन्तु इन आनन–फानन में सन्धि करके तथा अपने अस्तित्व व स्वतन्त्रता बनाए रखने के लिए रक्त की अन्तिम बूंद तक इस देश में कभी कोई राजा युद्धरत नहीं रहा। धर्मनियामक ब्राह्मण समाज ने अपने इष्ट देव की रक्षा के लिए तथा विधर्मियों द्वारा भ्रष्ट करने से बचाने के लिए तलवार नहीं उठाई। यही नहीं समाज की तीन–चौथाई जनता को हथियार उठाने से ही रोक रखने के सख्त नियम बना रखे थे।

किन्तु अंग्रेजों के आगमन से भारतीय मानस में एक नई चेतना का संचार हुआ। इसका श्रेय उन्हीं को जाता है जिन्होंने यह जानते हुए कि उनके द्वारा शिक्षा प्रसार ही उनके शासन के अन्त का हथियार बनेगी, उन्होंने व्यापार, साम्राज्य एवं धन–सम्पत्ति के विस्तार के साथ–साथ यह समझ भी विकसित की कि सभी तरह के मनुष्य में रणकौशल की प्रवृत्ति पाई जाती है। अतः उन्होंने भारत के समाज में अति नीच समझे जाने वाले लोगों को भी अपने सेना में भर्ती करके यहां के तथाकथित राजपूतों, क्षत्रियों, जाटों, सिक्खों, पठानों पर विजय प्राप्त थी। उनके द्वारा पाठशालाएं खोली गई, जिनके सहारे डॉ. आंबेडकर जैसे विद्वान बने। व्यापार के अनेक स्त्रोत खोले और फिर गांधीजी के अहिंसक आन्दोलन की मान्यता देकर अपने देश वापस हो गए। इस सारे ऐतिहासिक वृत्त में हम उनकी मानवीय संवेदनाओं का तथा नैतिक मूल्यों के दर्शन पाते हैं।

आजादी के 50 वर्षों बाद मानवीय हितों के लिए हुई पूना समझौते के अन्तर्गत एक अहिंसक सामाजिक, राजनैतिक क्रान्ति की प्रतिक्रान्ति कांग्रेस के प्रधानमन्त्री नरसिंह राव के समय से प्रारम्भ हुई जो उत्तरोत्तर गति प्राप्त कर रही है।

वर्तमान पुनरूत्थानवादी नेतागत

आरक्षण की नीति को वैश्विक व्यापार एवं निजीकरण के राक्षस के मुंह में धकेल रहे हैं और हम दलित 85 प्रतिशत का दावा करने वाले मुंह पर पट्टी बांधे, आंखे बन्द किए, हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। रामराज्य स्थापित करने की कल्पना करने वाले गांधीजी का सपना यदि पूरा हो जाता तो वह किस प्रकार का होता यह कल्पना करके ही कोई भी अछूत–दलित, स्त्री या अन्य समुदाय के अल्पसंख्यक वर्ग की रूह कांप जाएगी। रामराज्य का अर्थ है कि हिन्दू स्मृतियों, श्रुतियों, शास्त्रों, रामायण, महाभारत, वेदों आदि के काल की सामाजिक व्यवस्था को लागू करना, जिनमें निर्देश, आदेश एवं अनुदेश हैं। ब्राह्मणवाद पोषित हिन्दू सम्प्रदाय की मान्यता है कि वेद ईश्वर की वाणी है, सभी विद्याओं की पुस्तक है, अपौरूषेय है, उसकी वाणी को चुनौती नहीं दी जा सकती। वेद विरूद्ध व्यक्ति अपराधी है। आदि, आदि। वेद की वाणी है कि ब्राह्मण उस परम्पिता परमात्मा के मुख से, क्षत्रिय उसकी भुजाओं से, वैश्य उसकी जंघा से तथा शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुआ है।

इसी को गीता में श्रीकृष्ण द्वारा पुनर्प्रतिष्ठित किया गया–''मैंने चारों वर्णों को गुण, कर्म के अनुसार उत्पन्न किया है। इसको बनाने व विनाश करने वाला मैं स्वयं अव्यय अर्थात् अविनाशी ईश्वर हूं। पुनः कहा गया कि स्त्री, शूद्र और वैश्य पापयोनि से उत्पन्न हैं। यह भी कहा गया कि स्त्री और शूद्र को वेद नहीं पढ़ना चाहिए (क्योंकि वेदों में सारी विद्या–ज्ञान है)। सुनने पर शूद्र के कान में गर्म शीशा डालना चाहिए और यदि किसी भांति पढ़ लिया जाए तो फांसी पर लटका देना चाहिए। हम पढ़ते हैं कि राम ने शूद्र शम्बूक तपस्वी को मार डाला। एकलव्य ने स्वयं बड़े श्रम से धनुर्विद्या सीखी थी, किन्तु उसका अंगूठा कटवा लिया गया था। वाल्मीकिय रामायण के अन्तिम पृष्ठों पर निहत्थे लवणासुर का शत्रुघ्न द्वारा वध कर दिया जाता है।

कोई शूद्र यदि वेदमन्त्रों का उच्चारण करे, तो उसकी जीभ कटवा लेनी चाहिए।

शूद्र यदि पापी ब्राह्मण को पापी कह दे, तो उसकी जीभ कटवा दी जाए।

शूद्र यदि ब्राह्मण आदि को उसकी जाति के प्रति अपशब्द उच्चारण करे, तो उसके मुंह में गर्म जलती हुई शलाका ठूंस देनी चाहिए।

यदि शूद्र अभिमान से धर्म का उपदेश करे, तो उसके मुंह व कान में खौलता हुआ तेल डलवा दें।

अछूत या शूद्र जिस अंग से ब्राह्मण की पिटाई करे, उसका वही अंग कटवा देना चाहिए।

जो नीच–अछूत शूद्र ब्राह्मण के बराबर आसन पर बैठे, राजा को चाहिए कि उस अछूत के चूतड़ को आग से दाग दे या मांस निकलवा ले।

शूद्र को धन एकत्रित करने का अधिकार नहीं है। यदि शूद्र धन एकत्रित कर ले तो वह ब्राह्मण को ही सताएगा।

सेवा करने वाले भक्त शूद्र को उसके परिश्रम में बदले जूठा अन्न, पुराने उतरे कपड़े, बेकार सड़ा–गला अनाज, फटा–पुराना ओढ़न–बिछावन देना चाहिए जो नीच जाति का मनुष्य लोभ से उत्तम जाति की वृत्ति (व्यवसाय) से जीविका चलाए तो राजा उसका सारा धन छीन कर उसी समय उस नीच को देश से निकाल दे। शूद्र कोई दूसरे धर्म में भी नहीं जा सकता, क्योंकि गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं– ''अपने–अपने कर्म में लगे रहने पर ही मनुष्य सिद्धि पाता है। अपने धर्म में मर जाना भी अच्छा लेकिन परधर्म भयावह है, खतरनाक है। इसी की स्थापना के लिए आज भी हिन्दू महासभा, विराट हिन्दू सम्मेलन, विश्व हिन्दू परिषद् के नेता एकजुट होकर बार–बार सरकार पर दबाव डालते हैं कि धर्मान्तरण के अधिकार को निरस्त करो और किसी भी दलित को हिन्दू सम्प्रदाय से बाहर नहीं जाने दिया जाए, अन्यथा ये गुणवान, विद्यावान, बलवान, ज्ञानवान, कुशल–पुरूष बनकर स्वतन्त्र अस्तित्व का लाभ एवं सुख उठाएंगे और फिर इन संकुचित अमानवतावादी हिन्दू सम्प्रदाय के लिए परेशानी का कारण बनेंगे।

आज भी कोई शंकराचार्य या आर्य–समाजी या तथाकथित प्रचारक आशाराम, मुरारी, निर्मला देवी, जयगुरू देव, निरंकारी गुरूवचन सिंह या हरदेव सिंह या राधास्वामी मत के पुरोधा किसी भी स्मृति, श्रुति, शास्त्र, पुराण, भागवत, वेद, उपनिषद् में वर्णित अमानवीय आदेशों की आलोचना–समालोचना या समीक्षा की बात नहीं करते और न ही उनमें सार्वजनीन रूप से अविश्वास की बात करते हैं बल्कि दिन–रात उन्हीं का गुणगान करके पुनर्स्थापना के लिए सामान्य जनता को गुमराह करते रहते हैं। यह उपरोक्त सारे धार्मिक प्रावधान मानव हितों के विरूद्ध है और गांधीजी तथा उनके अनुयायी रामराज्य की स्थापना की वकालत करते हैं।

आज भी गांधीजी की उसी विचार श्रृंखला को बढ़ाते

हुए राम मन्दिर का मुद्दा देश के लिए भयानक समस्या बना हुआ है। हजारों लोग अपने निर्दोष प्राण गवां बैठे और आगे भी कत्लेआम की तैयारी हो रही है। यह सब दुष्परिणाम रामराज्य की स्थापना के स्वप्न से ही जुड़े हैं। अतः बाबा साहेब ने बहुत पहले ही कहा था कि हिन्दू समाज में व्याप्त चातुर्वर्ण्य व्यवस्था से मुझे अतिशय घृणा है, इसे नष्ट होना ही चाहिए। किन्तु गांधीजी उस व्यवस्था को प्राकृतिक, ईश्वरीय मानते थे। उनका तर्क था कि वह व्यवस्था तो सनातन है, पहले थी, आज है और भविष्य में भी रहेगी। यह तो ऋषियों द्वारा केवल खोज की गई थी। जिस प्रकार न्यूटन द्वारा Low of Gravity की खोज की गई।

वर्तमान सरकार के शिक्षामन्त्री ने स्कूल, कॉलेजों में पूजा पद्धति का कार्यक्रम चलाने का आदेश दिया है। हिन्दू संस्कार, अनुष्ठान, कर्मकाण्ड की शिक्षा के स्नातक–परास्नातक श्रेणी की डिग्रियां दी जाएंगी। दिल्ली में मन्त्री द्वारा स्वास्थोपचार का संकाय चल ही रहा है। इस प्रकार से रामराज्य की गांधीजी की कल्पना को साकार किया जा रहा है।

शिक्षा को सरकार के कर्तव्यों से उसकी जिम्मेदारियों से निकाला जा रहा है और आम पब्लिक पर उसका महंगा बोझ डाला जा रहा है– यह है रामराज्य। स्वास्थ्य विभाग का भी बुरा हाल है। गरीब इंसान खेतिहर मजदूर, आम मजदूर अपनी बीमारियों का इलाज सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर नहीं करा सकता उसका भी निजीकरण करके तथाकथित सवर्ण हिन्दू धन्नासेठ ही नर्सिंग होम चलाकर व्यापार बना कर जनता को लूट रहे हैं – यह है रामराज्य। इतिहास को बदलने के लिए सोची समझी चाल के जरिए अपने काले कारनामों को छुपाने, देशद्रोही हिन्दुओं का नाम छुपाने तथा मुस्लिमों, अंग्रेजों द्वारा सार्वजनीन हितों के कार्य पर परदा डालने का षड़यन्त्र चल रहा है। प्राचीन इमारतों को जिनका निर्माण मुस्लिम शासकों या अंग्रेज शासकों द्वारा किया करवाया गया या उन पर हिन्दू नामों की तखती लगाई जा रही है। उनको इतिहास में पढ़ाया जाएगा कि वे इमारतें हिन्दुओं ने बनवाई, जैसे ताजमहल, जामा मस्जिद, लाल किता आदि–यह है रामराज्य की व्यवस्था।

अब स्कूलों में वैज्ञानिक शिक्षा के स्थान पर हिन्दू विज्ञान पढ़ाया जाएगा, जिसके विषय होंगे– 1. हिन्दू सनातन धर्म में किस पेय को पवित्र माना जाता है? 2. गोमूत्र क्यों पवित्र है? 3. गंगाजल क्यों पवित्र है? 4. धातुओं में कौन धातु पवित्र या अपवित्र है। 5. मिट्टी के बर्तन अपवित्र क्यों? 6. जड़ किसे कहते हैं? 7. स्थूल किसे कहते हैं? 8. सूक्ष्म किसे कहते हैं? 9. दृष्ट, अदृष्ट (देवताओं सम्बन्धी) किसे कहते हैं? आदि किसे कहते हैं, अनादि किसे कहते हैं? अनन्त और सानन्त किसे कहते हैं? आप्त वाक्य प्रमाण किसे कहते हैं? ब्राह्म महूर्त किसे कहते है? शौच या पेशाब रास्ते में क्यों नहीं? धर्मशास्त्र के आधार कौन सा तेल–मर्दन उचित। मंगलवार को तेल–मर्दन से मृत्यु। पूर्वाभिमुख हो पूरा क्यों? मुस्लिम पश्चिम की ओर नमाज क्यों? चांद की पूजा क्यों? पितृतर्पण, श्राद्ध भोजन दान क्यों? ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों के लिए तिलक नहीं। कुंकुम का तिलक क्यों, मिट्टी का तिलक क्यों? सिन्दूर से मांग क्यों? हनुमान जी को सिन्दूर क्यों? चोटी का महत्व। चोटी में गांठ क्यों संध्या क्यों? जूता पहन भोजन क्यों आदि।

यह सब वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा के नाम पर चलाने की साजिश की जा रही है। इसे ही रामराज्य की शिक्षा प्रणाली का पाठ्यक्रम कहा जाता है। यह पक्ष बिलकुल स्पष्ट है कि यह सब ब्राह्मणवादी व्यवस्था स्थापित करने के लिए किया जाता है।

ऐसे में डॉ. आंबेडकर द्वारा कम्युनल एवार्ड लागू किए जाने पर दृढ़ता प्रकट करना उचित ही था, किन्तु गांधीजी अपने अड़ियल स्वभाव में जरा भी परिवर्तन नहीं करना चाहते थे और हर हाल में पृथक् निर्वाचन को रद्द करवाना चाहते थे, जिससे अछूत सदा–सदा के लिए सवर्णों की मर्जी के गुलाम बने रहें, उन पर ही निर्भर रहे।

आज भी हिन्दू सम्प्रदाय की मानसिकता, अत्याचारों, ईर्ष्या, द्वेष व घृणित प्रचार–प्रसार में कोई कमी नहीं आई है। इसके स्पष्ट प्रमाण दिन–प्रतिदिन की दुर्घटनाओं से मिलते हैं। आज भी ब्राह्मण जाति के उच्चतम व सर्वश्रेष्ठ बनाए रखने के षड़यन्त्र सभी स्तरों पर किए जा रहे हैं। राजकीय स्तर पर ब्राह्मणों को शिक्षा के क्षेत्र में कर्मकाण्डी पाठ्यक्रम पर अपना कब्जा करने के लिए सरकार ने अनहोने कदम बढ़ा दिए हैं। मन्त्रों द्वारा चिकित्सा के संकाय बनाए जा रहे हैं। पुरोहिताई के पाठ्यक्रम लागू किए जा रहे हैं। महेश योगी जैसे तथाकथित धन्नासेठ ब्राह्मणों के बच्चों को वेदज्ञान देने की खुली परम्परा चालू रखे हुए हैं। उनके गुरूकुल में सफाई कर्मचारी के अतिरिक्त किसी पद पर अछूत दलित नहीं उपलब्ध होगा। ब्राह्मण ही ग्रहों के एजेन्ट क्यों? ब्राह्मण ही दान का अधिकारी क्यों? ब्राह्मण द्वारा ही पूजा–पाठ क्यों कराएं? ब्राह्मण को देवता क्यों कहा गया? ब्राह्मणों को सर्वाधिक सम्मान क्यों? यज्ञ में तिल, मद्य, मधु, घी आदि क्यों जलाया जाता है? यज्ञ में जला पदार्थ लाख गुणा बढ़ जाता है। रजोदर्शन, रजस्वला, अस्पृश्य क्यों? यज्ञोपवीत क्या, उसमें तीन या पांच धागे क्यों? गोबर से लेप क्यों? गो–मूत्र का प्राशन क्यों, गो–मूत्र से स्नान। शव को जलाना कपाल क्रिया क्यों? तैंतीस करोड़ देवता कौन? एकादश रूद्रों के नाम बताएं। रूद्रारियादि के निवास स्थान बताएं। बारह आदित्यों के नाम बताएं। नमस्ते करना व्यवहारिक नही, हाथ मिलाना उचित नहीं। वर्ण–व्यवस्था मनुष्यों पर ही लागू होती है। वर्ण–व्यवस्था जन्मजात होती है। आंगन में तुलसी वृक्ष क्यों? लक्ष्मी भगवान् के चरणों में क्यों? चेचक को शीतला देवी क्यों? एक ही समय में दो अवतार प्रकट कैसे हुए? अवतारों के मंछू क्यों नहीं होती? मूर्ति पूजा क्यों? शालिग्राम और शिवलिंग के हाथ–पांव क्यों नहीं होते? शंख बजने–बजाने में वैज्ञानिकता। शंख से जल क्यों छिड़का जाता है? क्या मन्त्र अवैध होते हैं? क्या प्रार्थना से आराम मिलता है? ब्राह्मण उम्र में छोटा होने पर भी अपने से बड़े को पुत्र कह सकता है? चतुर्थी को चन्द्रदर्शन निषिद्ध की वैज्ञानिकता। चार धाम ही क्यों? शूद्र में गौ–ग्रास और स्वान–बलि क्यों? ब्राह्मणों को दक्षिणा क्यों? स्वास्तिक चिन्ह का वैज्ञानिक आधार, गणपति के मूषक वाहन होने का रहस्य, बिल्ली या भैंस के अशुभ दर्शन क्यों? लोहे, स्टील, अल्यूमिनियम पूजा में निषिद्ध क्यों? आदि प्रचार–प्रसार किया जा रहा है।

इस पुनरूत्थानवादी हिंसक मानसिकता का कार्यान्वयन करने वाली सरकार के रहते सरकारी नौकरियों में बड़ी कठिन मेहनत एवं संघर्ष से उपलब्ध आरक्षण की बैसाखी को छिन्न–भिन्न करके दलितों को पुनः पेशवाई युग में ढकेलने का सुविचारित षड़यन्त्र के चलते कोई भी दलित जागरूक व्यक्ति यह सोचने को बाध्य हो जाता है कि वह हिन्दू धर्म सम्प्रदाय में आस्था रखे या उसको तिलांजलि देकर क्यों न किसी समतावादी करूणामय एवं मानवतावादी धार्मिक समुदाय में सम्मिलित हो जाय, क्योंकि हिन्दू रहने का अर्थ है कि–

(1) राष्ट्रीय भावनाओं से ऊपर साम्प्रदायिक भावना को प्राथमिकता देना।

(2) समाज में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के लबादे के द्वारा विभाजक शक्तियों को जारी रखना।

(3) सदा–सर्वदा के लिए एक जाति की दूसरी जाति पर उच्चता की स्थापना जिसमें योग्यता, क्षमता और कार्यकुशलता के लिए कोई स्थान नहीं।

(4) श्रम का अनादर, श्रमिक का तिरस्कार।

(5) श्रमिकों का शोषण।

(6) राष्ट्रीय सम्पत्ति एवं उसके उद्गम व संसाधनों पर एकाधिकार।

(7) स्वधर्मी जनसामान्य में भेदभाव और विषमता।

(8) एक ही धर्म, विश्वास, आस्था संस्कृति, नस्ल, रंग एवं शारीरिक गठन के एक व्यक्ति द्वारा दूसरे की गुलामी, सेवकाई की अनिवार्य नीति।

(9) उच्च जाति/निम्न जाति आधारित भावना से प्रेरित न्यायालय द्वारा भेदभावपूर्ण न्यायिक फैसले।

(10) अपने ही करोड़ों स्वधर्मियों के नागरिक अधिकारों को शूद्र, अछूत, दलित, परिया, चाण्डाल, आदि को ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न बता कर उन्हें अदर्शनीय, असम्पर्कीय, अस्पृश्य बनाए रखना। (ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था की मूर्खतापूर्ण रचना)

(11) मनुष्य के सभी कार्यकारी क्षेत्रों में असमानता का नियम लागू रखना।

(12) स्वतन्त्रता का हास एवं हनन, जो मानव प्राणी के लिए नैसर्गिक वरदान है।

(13) समाज से बन्धुभाव का लोप।

(14) एक जाति द्वारा दूसरी जाति के प्रति द्वेषभाव व वैरभाव का प्रचलन।

(15) समाज में निरन्तर जातीय संघर्ष चलते रहना।

(16) समान अवसर की स्थापना हेतु अधिकार की प्राप्ति तथा समय, धन तथा बुद्धिबल की बर्बादी।

(17) अनेक जाति के लोगों की सम्पत्ति रखने के अधिकार से ही वंचित रखने के प्रयास जारी।

(18) नागरिक अधिकारों व सुविधाओं के उपभोग पर पाबन्दी लगाना।

(19) अपने ही देशवासी करोड़ों युवक, युवती नागरिकों के लिए शिक्षण संस्थाओं के दरवाजे बन्द रखना या युक्ति करना जिससे सर्व सामान्य शिक्षा न पा सकें।

(20) करोड़ों भारतीय नागरिकों को उनके द्वारा मताधिकार के प्रयोग से रोकना, जिससे वे अपनी पसन्द के प्रत्याशी के लिए असेम्बली व पार्लियामेन्ट के जिससे वे अपनी पसन्द के प्रत्याशी के लिए असेम्बली व पार्लियामेन्ट के चुनाव में मतदान न कर सकें।

(21) सामाजिक बहिष्कार करना।

(22) सहभोज से इन्कार करना।

(23) अन्तर्जातीय विवाह करने पर सामाजिक व्यवधान उत्पन्न करना।

(24) सार्वजनीन मन्दिर, कुओं, तालाबों, चारागाहों, सड़कों का प्रयोग न करने देना।

(25) जबरन बेगार करवाना।

(26) कमजोर वर्ग के दलितों की बहू–बेटियों पर कुत्सित दृष्टि रखना। उन पर दबंग उच्चजातीय सवर्णों द्वारा अत्याचार करना।

(27) निहत्थे, मजदूर, असहाय, दलितों को कायरतापूर्ण छिप कर रात्रि में सोते हुए को आधुनिक अस्त्रों से हत्या कर देना।

(28) दलितों का धन–दौलत लूट लेना।

(29) उनकी नौकरियों के अवसरों को हड़प जाना।

(30) ईमानदार कर्त्तव्य–पारायण दलित कर्मचारियों को षड़यन्त्र रच कर फंसाना व नौकरी से निकलवाना।

(31) दिन–दहाड़े खुली सड़क पर दलित अफसरों, कर्मचारियों की हत्या करना–करवाना।

(32) अन्ततः आत्मसम्मान व आत्मविश्वास की समाप्ति ही इसकी परिणति होती है।

जब तक कोई व्यक्ति हिन्दू सम्प्रदाय में रहेगा तब तक उपरोक्त अमानवीय बन्धनों से मुक्त नहीं हो सकता है। वह इतना असहाय एवं निर्जीव तथा भयाक्रान्त रहते हुए जीवनयापन करता है, जैसे चलती–फिरती एक लाश या यों समझें जैसे आजकल के इलेक्ट्रॉनिक व कम्प्यूटर नियन्त्रित **रोबोट** जिनके सभी कार्यकलाप उनके स्वयं द्वारा संचालित व नियन्त्रित न होकर नियन्त्रण कक्ष (Control Room) में बैठी उस टीम के द्वारा होता है, जिसने इन रोबोटों को नियन्त्रित करने की विशेष व्यवस्था का नियमन किया और अपनी मर्जी उन पर लादे रहते हैं। कभी–कभी रोबोट की आन्तरिक मशीन में Misconnection या Mismanagement होने से रोबोट Control Room का आदेश–पालन नहीं करते और अनियन्त्रित हो कार्य करने लग जाते हैं। इस स्थिति को कन्ट्रोल रूम की टीम रोबोट के सिस्टम की खराबी कह कर रोक देता है या उस रोबोट को ठीक करता है या रद्दी–कूड़े में फेंक देता है। कहने का अर्थ यह है कि हिन्दू समाज के वे समूह, समुदाय व जातियां जो अभी तक उस तन्त्र द्वारा ही नियन्त्रित हो रही है। जो वास्तव में उनके मौलिक मानवीय हितों के विरूद्ध हैं तथा उन सबकों येन–केन प्रकारेण अपनी विशिष्ट ब्राह्मणवादी व्यवस्था द्वारा नियन्त्रित करने के लिए संसद, विधानसभा, कोर्ट–कचहरी, थाना–कोतवाली बना रखे हैं। इस नियन्त्रण में इतनी शक्ति हमने ही प्रदान कर रखी है कि कोई भी अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति का व्यक्ति कितना ही योग्य व सक्षम या बलशाली हो खुलेआम जनसमूह में अपना पूरा नाम भी गौरव से उच्चारित नहीं कर पाता है।

अतः आवश्यक है कि ऐसी व्यवस्था को तिलांजलि

देकर कोई भी मानवाधिकारों को प्रश्रय व प्राथमिकता प्रदान करने वाली व्यवस्था (सम्प्रदाय = धर्म) के सदस्य बन जाएं। अन्यथा बाबा साहेब की इस भविष्यवाणी से बच नहीं सकते–

"Unfortunately for the Minorities in India, Indian Nationalism has developed a new doctrine which may be called the **Divine Right of the Majority** to rule the minorities accecding to the wishes of the Majority. Any claim for the monopolizing of the whole power by the majority is called Nationalism. Guided by such a political philosophy the majority is not prepared to allow the minorities to share political power nor is it willing to respect any convention made in that behalf as is evident from their repudiation of the obligation (to include representative of the minorities in the cabinet) contained in the Instrument of Instructions issued to the Governers in the Government of India Act of 1935."

अर्थात् ''खेद है कि भारतीय राष्ट्रवाद ने अल्पसंख्यकों के लिए नए सिद्धान्त का विकास कर लिया है, जिसे बहुत का दैवी अधिकार कहा जा सकता है। जिससे अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यकों की इच्छानुसार मनमाने ढंग से शासन किया जा सके। अल्पसंख्यकों को किसी भी भागीदारी की मांग को सम्प्रदायवाद कहा जाता है, जबकि बहुसंख्यकों द्वारा सारी शक्ति पर एकाधिकार को राष्ट्रवाद कहा जाता है। इस प्रकार के राजनैतिक दर्शन द्वारा निर्देशित बहुसंख्यक लोग अल्पसंख्यकों को राजनीतिक शक्ति का कोई भाग ही नहीं देना चाहते हैं और न ही वे उनको परम्परागत प्रावधान देने के लिए ही राजी होते हैं, जो उनके द्वारा मन्त्रिमण्डल के अल्पसंख्यकों की गतिविधियों को शामिल करने की आवश्यकता को नकारने से स्पष्ट होता है, जो राज्यपालों के लिए निर्गत भारत अधिनियम 1935 की धारा के आदेशों में समाहित है। अतः

"Under these circumstances there is no way left but to have the right of Scheduled castes/ Scheduled tribes embodies in the Constitution" (Ibid)

''ऐसी परिस्थितियों के होते इसके अतिरिक्त कि अनुसूचित जातियों/जनजातियों के अधिकारों का समावेश संविधान में कर दिया जाए, कोई रास्ता नहीं बचा है।''

अब हमारा दायित्व है कि हम उन प्रावधानों की रक्षा कर अपनी रक्षा करें तथा आने वाली पीढ़ियों के लिए इन उपायों को सुरक्षित बनाए रखें।

भवतु सब्बमंगलं।

साभार –
पूना–पैक्ट, क्यों, क्या और किसके लिए
पृष्ठ सं. 155 से 167
शीलप्रिय बौद्ध

अखिल भारतीय अनु0 जाति, अनु0 जनजाति एवं बौद्धिष्ट भारतीय जीवन बीमा निगम, कर्मचारी कल्याण संघ, कानपुर के तत्वाधान में

अखिल भारतीय अनु0 जाति, अनु0 जनजाति एवं बौद्धिष्ट भारतीय जीवन बीमा निगम, कर्मचारी कल्याण संघ, कानपुर के तत्वाधान में ऐतिहासिक स्थल नानाराव पार्क के मेले में प्रतिवर्ष की भांति, इस वर्ष भी भारत रत्न बाबा साहब डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर की 125वीं जयंती, विश्व ज्ञान दिवस के रूप में मनाने एवं संगोष्ठी का आयोजन रखा गया जिसमें क्षेत्रीय कार्यालय एवं मण्डल कार्यालय के वरिष्ठ अधिकारियों ने बाबा साहब के चित्र पर पुष्प अर्पित करते हुये उनके जीवन दर्शन पर प्रकाश डाला। क्षेत्रीय महासचिव हरि नाथ कुमार ने डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर द्वारा किये गए मंत्र शिक्षित बनों, संगठित हो, संघर्ष करो पर विस्तृत रूप से अपने विचार रखे और यह भी समझाने का प्रयास किया कि बाबा साहब जिस कारवां को विषम परिस्थितियों में अनेकों कठिनाइयों का सामना करके इस स्थिति तक लाये वह किसी भी स्थिति में पीछे नहीं जाना चाहिए और समता मूलक समाज की स्थापना के लिए निरंतर प्रयासरत रहना चाहिए। श्री सी. एल. कुरील क्षेत्रीय अध्यक्ष ने भी महिला कोड बिल पूना पैक्ट तथा देश व समाज के विकास के लिए बाबा साहब के बताए मार्ग पर चलाने की सलाह दी। इस अवसर पर प्रतीक चिन्ह के रूप में कल्याण संघ द्वारा बाबा साहब के नाम की–रिंग का विमोचन श्री संजय रस्तोगी, प्रादेशिक प्रबन्धक (कार्मिक) व श्री टी. अधिकारी वरिष्ठ मण्डल प्रबन्धक द्वारा किया गया तदोपरांत मेले में उसका वितरण भी किया गया। समारोह का संचालन श्री संतोष कुमार द्वारा एवं समापन श्री जगजीवन राम द्वारा किया गया। संगोष्ठी में भारी संख्या में लोगों ने अपनी सहभागिता दर्ज की और डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर जी के बताए मार्ग पर चलने का निर्णय लिया।

सी0 एल0 कुरील
अध्यक्ष

हरि नाथ कुमार
क्षेत्रीय महासचिव

सूचना :– हमारे अखिल भारतीय अनु. जाति, अनु. जनजाति एवं बौद्धिष्ट कल्याण संघ का क्षेत्रीय महाधिवेशन 21.05.2017 को सारनाथ, वाराणसी में होना सुनिश्चित हुआ है। अधिवेशन के मुख्य अतिथि श्री रामेश्वर जी (अखिल भारतीय उपाध्यक्ष) है।

द्रविड़ डिफेन्स वर्कर्स यूनियन

की ओर से 21.04.2017 को डा. बी. आर. अम्बेडकर की जयंती ओ. ई. एफ. फैक्टरी गेट के पास मनायी गयी। मुख्य अतिथि मा० आर. डी. चन्द्राहास व विशिष्ट अतिथि परशुराम वर्मा एवं समस्त कर्मचारी गण उपस्थित हुए।

सियाराम
संस्थापक, द्रविड़ डिफेन्स वर्कर्स यूनियन

वेदों की पहेलियां

वेद हिंदुओं के पवित्र ग्रंथ हैं। उनके संबंध में अनेक प्रश्न उठते हैं। उनकी उत्पत्ति कहां से हुई? उनका सृष्टा कौन है? उनकी सार्वभौमिकता क्या है? ये कुछ प्रश्न हैं।

हम पहले प्रश्न से आरम्भ करते हैं। हिंदुओं के अनुसार, वे सनातन हैं जिसका अर्थ है, वे अनादि–अनंत है, जबकि अथर्ववेद से यह कथन मेल नहीं खाता है। फिर इसका कोई औचित्य नहीं। अथर्ववेद कहता हैः

''काल से ऋक् ऋचाएं प्रस्फुटित हुईं और यजु काल से उपजा।'' किन्तु और भी विचार उपलब्ध हैं जो इससे बिलकुल भिन्न हैं।

अथर्ववेद से लेकर यह ध्यान देने योग्य है कि वेद में इस विषय पर दो अन्य प्रसंग हैं। इनमें प्रथम बहुत विवेकपूर्ण नहीं है। वह यह हैः

''बता वह स्कंभ कौन है? जो आदि ऋषियों, ऋक, साम, यजु, पृथ्वी और ऋषियों का पालक है.....20। बता वह स्कंभ कौन है जिससे ऋक (ऋचाएं) प्रस्फुटित हुई, जहां से वे यजुस में सम्माहित हुए, जिससे साम मंत्र उत्पन्न हुए अथर्वन और आंगिरस की वाणी क्या है?''

अथर्ववेद में जो दूसरा भाष्य आया है, उसके अनुसार वेद इन्द्र से प्रस्फुटित हुए।

ऋग्वेद का भाष्य पुरूष सूक्त में उपलब्ध है। इसके अनुसार एक विराट यज्ञ हुआ जिसमें एक रहस्यमय जीव ''पुरूष'' की बलि चढ़ाई गई। उस ''पुरूष'' की बलि से तीन वेद ऋक्, साम और यजु का आविर्भाव हुआ।

सामवेद और यजुर्वेद में वेदों की उत्पत्ति का प्रसंग नहीं है।

इसके पश्चात के ब्राह्मण ग्रंथों में शतपथ ब्राह्मण, तैत्तरीय ब्राह्मण, ऐतरीय ब्राह्मण और कौषीतकि ब्राह्मण में ऐसे प्रयास दृष्टिगोचर हैं जिनमें वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या की गई है।

शतपथ ब्राह्मण में कई व्याख्याएं हैं। यह वेदों की उत्पत्ति का श्रेय प्रजापति को देता है। उसके अनुसार प्रजापति ने अपने तप से तीन जगत, धरती, वायु और आकाश बनाए। उन्होंने इन तीनों में ऊष्मा संचारित की। इस ऊष्मा से तीन तेज उत्पन्न हुए। अग्नि, वायु और सूर्य। उनके ताप से तीन वेद उत्पन्न हुए। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और सूर्य से सामवेद।

ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण की भी यही व्याख्या है। शतपथ ब्राह्मण ने प्रजापति से वेदों की उत्पत्ति बताई है। भाष्य के अनुसार प्रजापति ने जल से तीन वेद बनाए। शतपथ ब्राह्मण कहता है –

''पुरूष प्रजापति की इच्छा हुई, ''मेरी अभिवृद्धि हो, मेरा विस्तार हो''। वे उपासना में बैठ गए। उन्होंने घोर तप किया। इस तप से उन्होंने सर्वप्रथम पवित्र ज्ञान, त्रिवैदिक विज्ञान की रचना की। यह उनका आधार बना। उन्होंने कहा ''प्रज्ञा ब्राह्मांड'' का मूल है।'' वेदों के ज्ञान के पश्चात पुरूष को आधार मिला क्योंकि प्रज्ञा उनका मूल है। इस आधार पर प्रजापति ने घोर तप किया। उन्होंने वाक् (वाणी) से जल का निर्माण किया। उसके विस्तारण से जल, अप्प कहलाया, उसकी सर्वत्र व्यापकता से वह ''वारि'' बना। उन्होंने चाहा, मेरा जल से विस्तार हो। इस त्रिवेद विज्ञान से वे जल में प्रविष्ट हुए। तब तक अण्डज उभरा। उन्होंने उसे प्राणवान किया और कहा ''भव भव पुनर्भव। जब प्रज्ञा का जन्म हुआ। त्रिवेद विज्ञान। फिर पुरूष ने कहा प्रज्ञा ब्राह्मांड की प्रथम सृष्टि है। पुरूष के समक्ष सर्वप्रथम प्रज्ञा की रचना हुई। इसलिए यह उसका मुख बनी। उसे वेद ज्ञाता की संज्ञा दी गई। इस प्रकार आगे वे कहते हैं। वह अग्नि के समान है क्योंकि प्रज्ञा अग्नि का मुख है।''

''क्योंकि अग्नि आर्द्र काष्ठ से उत्पन्न हुई थी। उससे भांति–भांति के धूम्र उभरे। वह परमात्मा का श्वास है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्व, आंगिरसों, इतिहास, पुराण, विज्ञान, उपनिषद, श्लोक, सूक्त, विभिन्न राजाओं के भाष्य–ये सब उसका श्वास है।''

शतपथ ब्राह्मण में तीसरी व्याख्या हैः

''मैंने तुझे सागर में स्थापित किया, वहीं तेरा आसन है। मस्तिष्क सागर है। मानस सागर से वाच द्वारा भगवान ने बेलचे से त्रिवैदिक विज्ञान को खोदकर निकाला। तत्पश्चात इस मंत्र का उच्चारण किया। प्रज्ञावान देवता जाने, इस आहुति सामग्री को उन्होंने कहां रखा? जिसे ईश्वर ने तेजधार बेलचे से खोदकर निकाला था। मस्तिष्क समुद्र है। वाच तीव्र बेलचा है। त्रिवैदिक विज्ञान समिधा है। इस संदर्भ में मंत्र को उच्चारा। यह मस्तिष्क में समा गया।''

तैत्तरीय ब्राह्मण की तीन व्याख्याएं हैं। वह कहता है, वेदों के कर्त्ता प्रजापति हैं। वह कहता है प्रजापति ने राजा सोम को बनाया और तत्पश्चात तीन वेदों की रचना की गई। इस ब्राह्मण की दूसरी व्याख्या का प्रजापति से कोई तात्पर्य नहीं। इसके अनुसारः

''वाच अविनाशी है। वह पूजा में प्रथम प्रसूत है। वेदों की जननी और अमरता का केन्द्र बिन्दु। हममें आनंद स्रजित कर वह यज्ञ बन जाती है। रक्षा की देवी सरस्वती मेरे आह्वान को सुनने को उद्यत हो। मेधावान ऋषि, मंत्रों के सृष्टा, देवगण जिनका अनुग्रह तप और कठोर उपासना से प्राप्त करते हैं।''

इस सबके ऊपर तैत्तरीय ब्राह्मण तीसरी व्याख्या देता है। वह कहता है कि वेद प्रजापति की दाढ़ी से उत्पन्न हुए।

उपनिषदों में भी वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या की गई है।

छांदोग्य उपनिषद की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण के समान है। अर्थात ऋग्वेद अग्नि से उत्पन्न हुआ, यजुर्वेद वायु से और सामवेद सूर्य से उत्पन्न हुआ।

बृहदारण्यक उपनिषद ने जो शतपथ ब्राह्मण का अग है, अलग कथा कही हैः

''प्रजापति द्वारा जिनका मृत्यु या यम के साथ तादात्म्य है वाच की रचना कही गई है और उसके माध्यम से आत्मा के साथ वेदों सहित सभी तत्वों का सृजन हुआ। उसी वाच और आत्मा से उसने सबका सृजन किया चाहे वह ऋग्वेद हो, यजुस, साम, छंद, यज्ञ या विभिन्न जीव–जंतु हों।''

''तीन वेद तीन तत्व हैं वाच, मानस और श्वासं। वाच ऋग्वेद है, मानस यजुर्वेद है और श्वास सामवेद।''

अब हम स्मृतियों पर आते हैं। मनुस्मृति में वेदों की उत्पत्ति के विषय में दो सिद्धांत हैं। एक स्थल पर कहा गया है कि वेदों का कर्त्ता ब्रह्मा है

''हिरण्यगर्भ उसी ब्रह्मा ने सभी के नाम कर्म तथा लौकिक व्यवस्था को पहले वेद शब्दों से जानकर पृथक्–पृथक बनाया उस ब्रह्मा ने इन्द्रादिदेव, कर्म, स्वभाव प्राणी–अप्राणी पत्थर आदि साध्यगण और सनातन यज्ञ की सृष्टि की। उस ब्रह्मा ने यज्ञों की सिद्धि के लिए अग्नि, वायु और सूर्य से नित्य ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद को क्रमशः प्रकट किया।

एक अन्य स्थान पर माना गया लगता है कि प्रजापति वेदों से सृष्टा हैं जो निम्न लिखित से प्रकट हैंः

''प्रजापति ने तीन वेदों से तीन अक्षर लिए अ, उ, म साथ ही भू, भुवह, और स्व लिया। उसी परम पुरूष प्रजापति ने तीन वेदों से कुछ अंश लिए सावित्री (अथवा गायत्री) आरम्भ में शब्द तत् लिया.....तीन अविनाशी अंशों (भू भुवहस्व) से बना ओउम और गायत्री के तीन चरण ब्रह्मा का मुख माने जाते हैं।''

यह जानना भी रोचक है कि पुराणों ने वेदों के विषय में क्या कहा है? विष्णु पुराण कहता हैः

''ब्रह्मा ने अपने पूर्वी मुख से गायत्री को बनाया, ऋग् मंत्रों, त्रिवृत समरथांतर तथा यज्ञ और अग्निस्तोम को रचा। अपने दक्षिणी मुख से उन्होंने यजुस मंत्रों को उत्पन्न किया। त्रिष्टुप छंद, पंचदश स्त्रोम, बृहत् साम और उकथ्य की रचना की। पश्चिमी मुख से साम छंदों और जगति मंत्रों को रचा, सप्तदश स्त्रोम, वैरूप और अतिरात्र की रचना की। अपने उत्तरी मुख से उन्होंने एकाविंश और अथर्वन, अपतोर्यमन की अनुष्टुप और विराज छंदों में रचना की।''

भागवत पुराण का मत हैः

''एक बार चतुर्मुख सृष्टा के मुख से वेदों का प्रस्फुटन हुआ जबकि वे समाधि में लीन थे। मैं सम्पूर्ण विश्व की पूर्ववत रचना कैसे करूं?..... उन्होंने अपने पूर्वी तथा अन्य मुखों से स्तुति, यज्ञ, मंत्रों और प्रायश्चित सहित ऋक, यजुस, साम, अथर्वन की सृष्टि की।''

मार्कण्डेय पुराण का मत है–

''1. ब्रह्मा के पूर्व मुख का अगोचर प्रस्फुटन हुआ, उससे एक विभाजन अंडज से समृद्ध ऋचाएं उपजी, 2. जो पाटल के पुष्प समान, मेधावी परस्पर विभाजनीय होते हुए भी गुथी हुई और रजस गुणों के सदृश्य। 3. उनके दक्षिण मुख से उन्मुक्त यजुस ऋचाएं फूटीं। कुंदन वर्ण और विभक्त, 4. परम ब्रह्मा के पश्चिमी मुख से साम मंत्र और छंद निस्रत हुए, 5 और 6. वेदों (ब्रह्मा) के उत्तरी मुख से श्यामल मधुमख्यिां और काजल जैसे वर्ण का अकर्वन प्रकट हुआ, जिसकी प्रवृत्ति एक बार भयावह और अभयावह, सम्मोहन को निष्प्रभावी करने में सक्षम निर्विकार और अंधकार दोनों गुणों से युक्त और सुरम्य तथा विपरीत, 7. ऋक् के मंत्र राजसी गुण सम्पन्न यजुस के सात्विक, साम के तामसी और अर्थवन के तामसिक तथा सात्विक दोनों गुण हैं।''

हरिवंश, ब्रह्मा और प्रजापति दोनों सिद्धांतों का पक्षधर हैः

''विश्व के विस्तार हेतु ब्रह्मा समाधिस्थ हो गए, चन्द्रमा से ज्योति पुंज निस्रत किया, गायत्री के हृदय में प्रवेश किया, उसके नेत्रों के मध्य में प्रविष्ट होते हुए। उससे तब एक नर रूप चतुष्पद की स्रष्टि की, जो ब्रह्मा की तरह द्युतिमान, अकथनीय, अजर–अमर, अविकारी और निर्गुण, विलक्षण प्रतिभा संपन्न, चंद्र किरनों की तरह निर्मल, प्रदीप और अक्षर युक्त था। परमेश्वर ने ऋग्वेद की रचना की, साथ ही अपने नेत्रों से यजुस, अपनी जिह्वा से सामवेद, और अपने मस्तक से अथर्वन रचा। इन वेदों ने अपनी स्रष्टि के साथ ही अपना आकार (नेत्र) ग्रहण कर लिया। उनमें वेदों की प्रवृत्तियां उत्पन्न हो गई, क्योंकि उन्हें विदांती प्राप्त हुई। तब इन वेदों ने पूर्व–स्थित अनादि–अनंत ब्रह्म (पावन–विज्ञान) का स्रजन किया, स्वमेधा जनित गुणों से दिव्य ब्रह्माण्ड रूप धारण किया।''

यह प्रजापति को स्रष्टा स्वीकार करता है। यह कहता है कि जब परमपुरूष ने अपने मुख से ब्रह्मांड और हिरण्यगर्भ की रचना की और अपने को विखण्डित करने की इच्छा की उन्हें संदेह था कि यह कैसे होगा।

हरिवंश आगे कहता हैः

''जब वह इस प्रकार प्रतिबिम्बित हो रहे थे, तो उनके मुख से ओउम शब्द निकला। जो पृथ्वी, वायु और आकाश में प्रतिध्वनित हुआ। जब देवाधिदेव ने इसका बार–बार उच्चारण किया तो उनके चित् से मस्तिष्क का सत्व सक्रिय हुआ। उनके हृदय से वषट्कार उद्धेलित हुआ। तब पवित्र और परमोत्कर्ष व्याहृतियां भू, भुव, स्व से महान स्मृति बनी, जो पृथ्वी, वायु और आकाश से ध्वनि रूप में परिवर्तित हुई। तब देवी उत्पन्न हुई, श्रेष्ठतम छंद बने। चौबीस पदीय (गायत्री) की रचना हुई। दैवी शब्द तत् से परमेश्वर से सावित्री रची। तब उसने ऋक्, साम, यजुर्वेद और अथर्वन आदि वेदों, उनकी प्रार्थनाओं और संस्कारों की रचना की।''

वेदों की सृष्टि से संबंध में ग्यारह विभिन्न व्याख्याएं हैं – 1. पुरूष के रहस्यात्मक यज्ञ से, 2. स्कंभ से, 3. उनके प्रत्यंगो से जैसे उनके केश और मुख, 4. इन्द्र से, 5. काल से, 6. अग्नि, वायु और सूर्य से, 7. प्रजापति के विस्तारण और जल से, 8. ब्रह्मा की श्वास से, 9. परमेश्वर द्वारा मानस सागर की खुदाई से, 10. प्रजापति की दाढ़ी से, 11. वाच के प्रस्फुरण से।

एक साधारण से प्रश्न का इस तरह को बढ़ाचढ़ाकर भ्रामक उत्तर एक पहेली है। इन सब प्रश्नों का उत्तर देने वाले ब्राह्मण हैं। वे सभी वैदिक परम्परा के दास हैं। वही प्राचीन धार्मिक कथाओं के संरक्षक हैं। वे इस सीधे सवाल का फिर ऐसा बेसिर पैर का अस्पष्ट उत्तर क्यों देते हैं?

II

वेदों का रचयिता कौन है? हिदुओं का विश्वास है कि वेद दैवी रचना है। तकनीकी शब्दावली में वेद अपौरूषेय हैं, अर्थात् मानवेंतर हैं।

इस विश्वास का साक्ष्य क्या है? प्राचीन संस्कृत साहित्य में एक रचना है, अनुक्रमणी। वैदिक साहित्य के विभिन्न अंगों का इसमें व्यवस्थित संकेत है। प्रत्येक वेद की एक अनुक्रमणी है। कहीं–कहीं एक से अधिक भी हैं। ऋग्वेद की सात अनुक्रमणी उपलब्ध हैं। इनमें से पांच शौनक की, एक कात्यायन की और एक किसी अज्ञात लेखक की तैयार की हुई है। यजुर्वेद की तीन हैं। इसकी तीन शाखाओं में से प्रत्येक की एक है। ये हैं, आत्रेयी, चारण्या और मध्यादिन। सामवेद की दो अनुक्रमणी हैं। एक का नाम आर्शेय ब्राह्मण हैं और एक का नाम परिशिष्ट है। अथर्ववेद की एक अनुक्रमणी है। इसका नाम बृहत सर्वानुक्रमणी है।

प्रो. मैक्समूलर के अनुसर सबसे पूर्ण अनुक्रमणी कात्यायन की ऋग्वेद के लिए सर्वानुक्रमणी है।

इसकी महत्ता इस कारण है कि 1. इसमें प्रत्येक मंत्र का प्रथम शब्द दिया गया है। 2. मंत्रों की संख्या है। 3.

संकलनकर्ता ऋषि, उसकी परम्परा का नाम। 4. देवता का नाम और 5. प्रत्येक छंद का नाम दिया है। सर्वानुक्रमणी के संदर्भ से यह आभास मिलता है कि विभिन्न ऋषियों ने मंत्रों की रचना की और उनका सम्पूर्ण संकलन ऋग्वेद बना। ऋग्वेद की अनुक्रमणी के अनुसार यह साक्ष्य मिलता है कि यह वेद पौरूषेय हैं। अन्य वेदों के विषय में भी यही निष्कर्ष हो सकता है।

अनुक्रमणी यथार्थ हैं। यह ऋग्वेद के मंत्रों से पता चलता है जिनमें ऋषि अपने को वेदों का संयोजक मानते हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैः

''कण्वों ने तुम्हारे लिए प्रार्थना की, उनकी स्तुति सुनो''

''हे इन्द्र! अश्वों के सारथी अपनी प्रभावोत्पादकता हेतु गौतम का मत्र सुनो''

''तेरे तेजवर्धनार्थ हे ऐश्वर्यमान अश्विन! मानस द्वारा प्रभावोत्पादक मंत्रों की रचना की गई है।''

''हे अश्विन! यह सार्थक उपासना मत्र तेरे लिए गृत्समद ने उच्चारा है।''

हे इन्द्र! तू प्राचीन है, जो अश्वों को जोतता है, तेरे लिए गौतम के वंशज नोधाओं ने नया मंत्र रचा है।''

''सो हे पुरोधा! प्रश्रय हेतु गृत्समद ने मंत्र रचा है, जैसे मनुष्य निर्माण करता है।''

''ऋषियों ने इन्द्र के लिए एक प्रभावोत्पादक रचना की है और प्रार्थना की है।''

''हे अग्नि! यह मंत्र तेरे लिए रचा है अपनी गउओं और अश्वों का सुख भोग।''

''हमारे पिता इन्द्र के मित्र अयाश्य ने सप्त शीर्ष पवित्र सत्यज इस चौथे महान मंत्र का आह्वान किया है।''

''हम रहुगणों ने मधुभाषी अग्नि के लिए मंत्रोच्चार किया है। उसका गुणमान करते हैं।''

''सो आदित्यों, अदितियों और सत्ता–सम्पन्न गण प्लापि पुत्र ने तुम्हारी स्तुति की है। गया ने स्वर्गीय देवों की प्रशस्ति गाई है।

''इसी को वे ऋषि पुरोहित यज्ञकर्ता कहते हैं, स्तुति गायक, मंत्रोच्चारक कहते हैं। वही (अग्नि के) तीन शरीरों को जानता है। वही वरदानों की पूर्ति करने वाला प्रमुख है।''

अनुक्रमणिकाओं के अतिरिक्त और भी साक्ष्य हैं, जिनसे पता चलता है कि वेद अपौरूषेय नहीं हैं। ऋषि वेदों से मानवकृत और ऐतिहासिक रचना मानते हैं। ऋग्वेद के मंत्र पूर्ववर्ती और तत्कालीन मंत्रों के बीच भेद करते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैंः

''अग्नि जिसकी पूर्ववर्ती और साथ ही वर्तमान ऋषि भी स्तुति करते हैं, देवों को इधर आमंत्रित करेगी।''

''पूर्ववर्ती ऋषि ने संकटमोचन हेतु तेरा आह्वान किया।

''मुझ वर्तमान ऋषि की ऋचाएं सुनो, इस वर्तमान (ऋषि) की।''

''इन्द्र! तू पूर्ववर्ती ऋषियों के लिए एक आह्लाद था, जिन्होंने तेरी अर्चना की। जैसे पिपासु के लिए जल। इस मंत्र द्वारा में तेरा पुनः पुनः आह्वान करता हूं।''

''पूर्ववर्ती ऋषियों, देदीप्यमान मुनियों ने बृहस्पति के सम्मुख आह्लादपूर्ण स्वर में प्रस्तुत किया।''

''हे माधवन किसी पूर्ववर्ती या परवर्ती पुरूष अथवा वर्तमान पुरूष में इतना पराक्रम नहीं।''

क्योंकि (इन्द्र के) पूर्ववर्ती आराधक हम हो सकते हैं, वे निष्कलंक, अप्राप्य और अनाहूत थे।''

''हे शक्तिमान देव! इस हेतु लोग तेरे आराधक हैं, जैसे कि पूर्ववर्ती मध्य–युगीन और परवर्ती तेरे मित्र मित्र थे और हे परम आहूत, सभी वर्तमान वय वालों की सोच''

''इन्द्र के लिए हमारे पूर्व पिता सात नवगव ऋषि अपने मंत्रों में भोजन की याचना करते हैं।''

''हमारे नवीनतम मंत्र से गौरवान्वित हो, क्या आप हमें सम्पदा और संतति सहित भोजन देंगे?''

ऋग्वेद के गहन अध्ययन से पता चलेगा कि उसके पुराने और नए मंत्रों के बीच अंतर है। उनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं :

''हमारे नवीनतम मंत्र से गौरवान्वित हो, तुम हमें सम्पदा और संतति सहित भोजन प्रदान करो।''

''हे अग्नि! तूने देवताओं के मध्य हमारी नवीनतम मंत्र आहुति की घोषणा की थी।''

''हमारे नवीन मंत्रों से तेरा वेग बढ़ेगा। नगर विध्वंसक, पुरंदर हमें प्राणवान आर्शीवाद दें।''

''शक्ति पुत्र अग्नि को मैं एक नवीन ऊर्जावान मंत्र अर्पित करता हूं जो भाव–वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।''

''जो नवीन अभिव्यक्ति अभी प्रस्फुटित हुई है, उसके द्वारा मैं शक्तिमान संरक्षक को मानस रचना प्रदान करता हूं।''

''हमारी सहायता हेतु गर्जन करने वाले पुंगव नया मंत्र तुझे उद्बोधित करे।''

''मैं पूर्वजों की भांति नवीन मंत्र द्वारा तुझे उत्प्रेरित करना चाहता हूं।''

''तेरी स्तुति में जो नए मंत्र रचे हैं, उनसे तू संतुष्ट हो।''

''हे सोभारी, इस युवा शक्तिमान, देदीप्यमान और बुद्धिमान देवों के लिए नए मंत्रों का उच्चारण कर।''

''गर्जन करने वाले वृत्रहंता इन्द्र! हम अनेक ने तेरे लिए कई मंत्र रचे हैं, जो सर्वथा नवीन हैं।''

''मैं इस प्राचीन देव को सम्बोधित करूंगा, मेरी नई स्तुति, जिसकी उसे इच्छा है उसे वह सुने।''

''हम अश्वों, पशुधन और सम्पदा की कामना से तेरा आह्वान करते हैं।''

इतने साक्ष्य प्रस्तुत करने पर यह सिद्ध होता है कि वेदों की रचना मुनष्य ने की है जबकि ब्राह्मणों ने कंठशक्ति से यह प्रचारित किया कि वेद मानव–रचित नहीं है जो एक पहेली है। ब्राह्मणों द्वारा यह प्रचार किस उद्देश्य से किया गया?

III

वेदों की सत्ता क्या है? हिंदुओं में इसके संबंध में दो भिन्न मान्यताएं हैं। पहली यह कि वेद सनातन हैं। इस मान्यता की विवेचना न कर हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि ऐसे मत का औचित्य क्या है? यदि हिंदुओं को विश्वास है कि वेद विश्व के प्राचीन रचित ग्रंथ हैं तो इस पर कोई विवाद नहीं कर सकता। परन्तु इस अद्भुत विचार को युक्तिसंगत ठहराने का कोई आधार नहीं है कि ये अनादि हैं। एक बार यह प्रमाणित हो जाने पर कि ऋषि वेदों के सृष्टा हैं तो यह प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती कि वेदों का आरंभ उस काल से मेल खाता है, जब ऋषि हुआ करते थे। यह कहने से कि ऋषि वेदों के सृष्टा हैं यह मान्यता अनर्गल हैं कि वेद सनातन हैं।

इस मान्यता को जीवित रखने के लिए जा तर्क किए गए हैं वे भी हास्यास्पद ही हैं।

सर्वप्रथम, यह उल्लेखनीय है कि यह मान्यता निराधार हैं कि वेदों की रचना परमात्मा ने की है। यह विश्वास नैयायिकों ने जमाया। परन्तु ऐसा लगता है कि पूर्व मीमांसा के प्रणेता जैमिनि के विचारों की हिंदुओं में मान्यता है और वे इस बात के पक्ष में नहीं है। मीमांसकों का यह उद्धरण उल्लेखनीय है।

''किन्तु (मीमांसक पूछता है) अमूर्त परमेश्वर ने किस प्रकार वेदों को अभिव्यक्त किया? जिसका तालु और उच्चारण का अन्य अंग नहीं है। इस कारण यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उसने शब्दों का उच्चारण किया होगा। यह प्रयास (नैयायिक का उत्तर) मान्य नहीं हैं। क्योंकि परमेश्वर अमूर्त है फिर भी अपने भक्तों को कृतार्थ करने हेतु वह रूप धारण कर सकता है, इस प्रकार यह तर्क कि वेद पौरूषेय नहीं हैं खण्डनीय है।

''मैं अब (मीमांसक कहता है) कि इन संदेहों का निराकरण करता हूं कि इस पौरूषेयत्व का क्या अर्थ है, जिसे प्रमाणित करना है। इसका तात्पर्य है (1) किसी पुरूष द्वारा उत्पत्ति, जैसे हमारे द्वारा वेदों की उत्पत्ति जब हम इनका दैनिक पाठ करते हैं अथवा (2) इसकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से क्या यह कोई व्यवस्था है, जो ज्ञान अन्य साक्ष्यों से ग्राह्य है जैसे कि हमने स्वयं ग्रंथों की रचना की है। यदि पहले अर्थ को ग्रहण किया जाए तो कोई विवाद नहीं होगा। यदि दूसरे भाव को ग्रहण किया जाए तो मेरा प्रश्न है कि क्या इस कारण वेदों को प्रामाणिक माना जाए कि हमें इनसे आभास होता है अथवा (क) कि वेदों की प्रामाणिकता इसलिए है कि यह आभास मात्र है यदि मालतीमाधव अथवा अन्य निरपेक्ष रचनाओं के कथन को देखा जाए तो यह सही नहीं हो सकता क्योंकि यह सिद्धांत निराधार नहीं। यदि दूसरी ओर आप कहते हैं। (ख) वेदों की सामग्री अन्य प्रामाणिक ग्रंथों से भिन्न है, इससे भी दार्शनिक सहमत नहीं होंगे क्योंकि वेद वाक्य, वह वाक्य है, जिसे अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। अब यदि यह स्थापित किया जा सके कि वेद वाक्य मात्र उसी को प्रमाणित करता है, जो अन्य साक्ष्यों से प्रामाणिक है तो हम उसी दलदल में फंस जाएंगे, जैसे कोई व्यक्ति कहे कि उसकी माता एक बंध्या नारी थी। और यदि हम यह स्वीकार कर लें कि परमेश्वर ने कोई स्वरूप धारण किया होगा तो यह मान्य नहीं होगा क्योंकि बिना किसी तत्व के उन्होंने ऐसा कुछ व्यक्त किया हो, जो अतीन्द्रिय हो। यह संभव नहीं, वह भी जब तक कोई देशकाल परिस्थिति न हो। न ही यह सोचा जा सकता है कि उनके नेत्र तथा दूसरी इन्द्रियों में ऐसे ज्ञान प्रसार की कोई शक्ति थी। पुरूष केवल वही जान सकता है, जो उसने साक्षात् देखा है।

किसी सर्वज्ञ रचयिता की कल्पना से असहमत यही गुरू (प्रभाकर) ने कहा है। ''जब किसी सर्वज्ञ को चुनौती दें जिसने किसी तत्व का संपूर्ण रूप देखा हो तो यह कल्पना बहुत ही धुंधली अथवा अति सूक्ष्म होगी क्योंकि कोई भी इन्द्रिय अपने निश्चित धर्म से विरत नहीं हो सकती, जैसे श्रवणेन्द्रिय किसी स्वरूप को देख नहीं सकती। इस प्रकार वेदों की सत्ता किसी इहलौकिक ज्ञान से सम्पन्न नहीं हैं जो किसी अमूर्त अरूप देव से प्राप्त हुआ हो।''

नैयायिकों के मत को निरस्त करने हेतु जैमिनि ने उपरोक्त तर्क प्रस्तुत किए हैं। तदुपरांत जैमिनि पूर्व मीमांसा में सकरात्मक तर्क देते हैं कि वे किसी भी प्रकार ब्रह्मवाक्य नहीं है किन्तु उससे भी श्रेष्ठ हैं उनका कथनः

''परवर्ती सूक्तियों में उद्घोषित किया गया है कि ध्वनि का संयोजन और उसका अर्थ सनातन है। वह चाहते हैं कि प्रमाणित करें कि यह (संयोजन) की सनातनता शब्द की सनातनता अथवा स्वर पर निर्भर है, हम प्रश्न के प्रथमांग से आरंभ करते हैं अर्थात् उस सिद्धांत से कि ध्वनि सनातन नहीं हैं।''

''कतिपय अर्थात् नैयायिक कहते हैं कि ध्वनि एक रचना है क्योंकि हम जानते हैं कि यह प्रयासोत्पन्न है, यदि यह सनातन होती तो ऐसा न होता।''

''कि अपने संक्रमण स्वभाव के कारण यह सनातन नहीं है अर्थात् यह एक क्षण में ही विलीन हो जाती है।'' क्योंकि इसके संबंध में हम क्रिया को ''निकलना'' कहते हैं अथवा हम ध्वनि निकालते हैं।

''क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों को इसकी अनुभूति तत्काल होती है और परिणामत श्रवणेंद्रिय के तत्काल सम्पर्क में आती है दूरस्थ और निकटस्थ। यदि यह सनातन और एकमेव होती तो ऐसा न होता।''

''क्योंकि ध्वनि के मूल और संशोधित दो रूप होते हैं ''दधि अत्र'' और ''दधी अत्र'' के रूप में प्रस्तार के नियम से मूल ध्वनि ह्रस्व ''इ'' दीर्घ ''ई'' में बदल जाती है इस प्रकार जिस तत्व में परिवर्तन हो जाता है वह सनातन नहीं है।'' क्योंकि यदि अधिक संख्या में व्यक्ति समवेत ध्वनि करते हैं तो उसका विस्तार हो जाता है। फलतः मीमांसकों का सिद्धांत तथ्यहीन हो जाता है। जो कहते हैं कि ध्वनि मानव प्रयत्न से प्रकट ही की जाती है उत्पन्न नहीं की जाती क्योंकि सहस्त्रों वक्ता भी उसके अर्थ में विस्तार नहीं कर सकते, उसके स्वर का ही विस्तार करते हैं। जैसे एक सहस्त्र दीपक भी एक घड़े के आकार का विस्तार नहीं कर सकते।''

मीमांसकों के इस सिद्धांत के विरूद्ध, इन आपत्तियों का निम्न सूत्रों के द्वारा उत्तर दिया है कि ध्वनि प्रकट की जाती है और उसके उच्चारण उसे उत्पन्न नहीं कर सकतेः

''परंतु दोनों सिद्धांतों के अनुसार यथा जो स्वीकार करता है कि ध्वनि उत्पन्न होती है और दूसरे के अनुसार जो कहता है कि वह मात्र प्रकट की जाती है, दोनों के अनुसार वह क्षणिक है। परन्तु इन दोनों मतों के अनुसार अभिव्यक्ति का सिद्धांत अगले मंत्र से प्रकट है, जो यथार्थ है।'' काल विशेष में सनातन ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती है। उसका कारण है कि कर्ता और कर्म का सम्पर्क नहीं बन पाता। ध्वनि शाश्वत है उदाहरणार्थ–क्योंकि हम एक स्वर ''क'' से अवगत हैं जो हमें प्रायः सुनाई पड़ता है क्योंकि यह सहज प्रक्रिया है तो हमें उसकी सहज कल्पना होती है। नीरवता में जब किसी वक्ता के मुख से वायु का संयोजन और वियोजन होता है तो उससे वातावरण तरंगित होता है और इस प्रकार ध्वनि का आभास होता है जो सदैव विद्यमान रहती है। चाहे उसका आभास न भी होता हो उसके संचरण पर आपत्ति का यह उत्तर है।

''ध्वनि करना'' का अर्थ एक क्रिया अथवा ''उच्चारण''। जैसे सूर्य का दर्शन एक साथ अनेक व्यक्ति करते हैं, वैसे ही ध्वनि भी एक साथ अनेक व्यक्तियों द्वारा सुनी जाती है। ध्वनि सूर्य की भांति सर्वव्यापी है। यह कोई सूक्ष्म तत्व नहीं है। इसलिए सभी को समान रूप से ग्राह्य है चाहे कोई निकटस्थ हो अथवा दूरस्थ।''

''सूत्र 10 में वर्णित है कि ''इ'' स्वर ''ई'' में परिवर्तित हो जाता है। वह ''इ'' का रूपांतरण नहीं है बल्कि ''ई'' एक भिन्न स्वर हैं। परिणाम निकलता है कि ध्वनि का रूपांतरण नहीं होता।''

''जब कई व्यक्ति समवेत स्वर में बोलते हैं तो कोलाहल ही बढ़ता है, स्वर वही रहता है। कोलाहल का

अर्थ है भिन्न–भिन्न दिशाओं से वायु के संयोजन–वियोजन का एक साथ कानों में प्रवेश। इसी कारण उसका विस्तार होता है।''

''ध्वनि सनातन होनी चाहिए क्योंकि वह अन्य लोगों तक अर्थ प्रेषित करती है। यदि वह सनातन न होती तो जब तक श्रोता उसका भाव जानता, तब तक वह उपस्थित ही न रहती और इस प्रकार श्रोता भाव–ग्रहण करने से वंचित रह जाता क्योंकि वह उपस्थित ही नहीं रहती।''

''ध्वनि सनातन है, क्योंकि वह सदैव सही और समान होती है और अनेक व्यक्ति उसे एक साथ समान रूप से सुनते हैं और यह नहीं माना जा सकता कि वे सभी गलती करें।''

''यदि 'गौ'' (गाय) शब्द को दस बार दोहराएं तो श्रोता कहेंगे कि दस बार ''गौ'' कहा गया है। वे यह नहीं कहेंगे कि ''गौ'' की ध्वनि के दस शब्द कहे गए हैं। इस प्रकार ध्वनि की शाश्वतता का यह एक और प्रमाण है।''

''ध्वनि सनातन है, क्योंकि हमारे पास यह मानने के लिए कोई आधार नहीं है कि इसका क्षय हो जाता है जैसा कि सूत्र 20 में।''

''परन्तु यह कहा जा सकता है कि ध्वनि वायु का रूपांतरण है क्योंकि इसका उद्‌गम वायु का संयोजन क्योंकि शिक्षा (वेदांग) का कथन है कि ध्वनि के अनुरूप हवा निकलती है और इस प्रकार यह वायु से उत्पन्न होती है। इसलिए सनातन नहीं हो सकती।''

इस आपत्ति का निराकरण सूत्र 22 में किया गया है:

''ध्वनि वायु का रूपांतरण नहीं है, यदि ऐसा होता तो श्रवणेंद्रिय के समक्ष कोई संगत तत्व न होता।

इस न्यायबद्ध सार को देखते हुए कि ''ध्वनि सनातन है और वेद के शब्द भी ध्वनि हैं, इस कारण वेद भी सनातन हुए'' हम तर्कों की कीचड़ में फंसना नहीं चाहते। आश्चर्य यह है कि ब्राह्मणों ने वेदों के सनातन होने का यह सिद्धांत क्योंकर प्रचारित किया? अपने सिद्धांत के समर्थन में उन्होंने ऐसे अनाप–शनाप तर्क क्यों गढ़ डाले? ब्राह्मणों ने यह स्वीकार क्यों नहीं कर लिया कि वेद ब्रह्मवाक्य नहीं है?

वेदों की सत्ता के विषय में दूसरी मान्यता यह है कि वे मात्र पावन और पवित्र ही नहीं है बल्कि वे संशय–रहित हैं।

यह समझना कठिन है कि ब्राह्मणों ने वेदों को संशय–रहित बताने के प्रयास क्यों किए?

नियमों के संदर्भ में वेदों में कोई अटल भाव नहीं है। वेदों ने धर्म को नैतिक भावना प्रदान नहीं की। वेदों के तीन अंशों को मुश्किल से ही नैतिक परिधि में ढाला जा सकता है।

पहला यम–यमी संवाद है जो भाई–बहन थे :

''यमी ने यम से कहा कि मैं तुझे प्रणय–निमंत्रण देती हूं। हम अविरल पारावार से निकल कर इस भूखण्ड के सूनेपन में अकेले हैं, तू मुझे अपना प्रणय सुख दे।'' यम को बहन से सहवास करने की इच्छा नहीं थी, उसने कहा, 'तेरा प्रिय तुझसे प्रणय का इच्छुक नहीं है क्योंकि हम दोनों सहोदर हैं।'' तब यमी बोली, ''सभी अनश्वर संसार का आनन्द लूटते हैं। नश्वरों को यह सुख उपलब्ध नहीं होता। तू मुझसे वैसे ही संसर्ग कर जैसे विधाता ने अपनी पुत्री से किया था। तू मेरी देह से वहीं आनन्द लूट।'' यम ने पलटकर उत्तर दिया, जो अतीत में हो चुका है, हमें वैसा नहीं करना चाहिए क्योंकि हम सत्यवादी हैं। असत्य कैसे कहेंगे?'' यमी आतुर थी। वह बोली, ''जो परम स्वरूप है, उसी देव ने गर्भ में ही हमारी रचना मिथुन–युगल के रूप में की हैं, भला उसी इच्छा के विपरीत कोई जा सकता है। धरती और आकाश हमारा मिलन देखने की आतुर है।'' यम सहमत नहीं हुआ। आरम्भ की बात कौन जानता है और कौन बता ही सकता है? परन्तु यमी का मन नहीं मान रहा था। उसने फिर कहा, ''मेरी इच्छा तुझसे सहवास की हो रही है। तू उसे पूरा कर, मैं अपने प्रियतम पर अपना सर्वस्व न्यौछावरर करती हूं। हमारा मिलन होना ही चाहिए, वैसे ही जैसे रथ के दो पहिए होते हैं। ''यम ने यमी को समझाया'' परमात्मा ने धरती पर अनेक जीवन बनाए हैं, तू मेरे सिवाय किसी को भी अपना ले और उसी प्रकार चल जैसे रथ के दो पहिए चलते हैं। फिर यम ने यह भी समझाया कि अब वह समय आ गया है कि बहन उसी को पति चुनेगी, जो उसका भाई नहीं होगा। इसलिए है शुभे, किसी अन्य का हाथ थाम और आनन्द ले।'' यमी ने कातर होकर कहा, ''क्या वह भी कोई भाई है जिसकी बहन का कोई नाथ न हो। क्या कोई ऐसी बहन होगी जिसे ऐसे दुर्भाग्य का सामना करना पड़े। मेरी उत्कट इच्छा है तू उसे पूरा कर, आ और मुझमें एकाकार हो जा।'' यम अटल रहा और दो टूक उत्तर दिया, ''मैं तुझसे कभी सहवास नहीं करूंगा। जो बहन से संसर्ग करता है, वह पापी कहलाता है। मेरे सिवाय किसी अन्य से देह–सुख प्राप्त कर। तेरे भाई का ऐसा करने का कोई विचार नहीं है।'' यमी ने अंत में दुखी मन से कहा, ''यम, तू बड़ा निर्बल हृदय है। तू मेरे मन की, मेरे मानस की स्थिति नहीं समझता। क्या तुझसे कोई नारी ऐसे लिपटेगी, जैसे घोड़े से तंग लिपटता है, अथवा जैसे किसी वृक्ष से कोई लता लिपट जाती है।'' यम ने अंत में कहा, तू भी किसी अन्य पुरूष के साथ वैसे ही लिपट जा जैसे वृक्ष से लता लिपट जाती है। उसका प्रणय प्राप्त कर, वह भी तुझसे वैसे ही मिलन को आतुर हो, तब तू अतीव सुख पा। ''यम ने उसका और भी शुभ चाहा, उसने कहाः

''राक्षस हंता अग्नि हमारी प्रार्थना स्वीकार करे, दुरात्मा से त्राण दे, जो व्याधि के रूप में तेरे भ्रूण को आक्रांत कर सके, जो अंतः काष्ठ की भांति तेरे गर्भाशय को निरस्त करे।''

''अग्नि देव हमारी अर्चना को स्वीकार करें, नरभक्षियों को नष्ट करें जो व्याधि के रूप में तेरे गर्भाशय पर दुष्प्रभाव डालते हैं, जो अंतः काष्ठ की भांति तेरी कोख को रीति कर सकते हैं।''

''दुरात्मा से हमें त्राण दे, जो पुंसत्व का हरण करते हैं। गर्भ ठहरते ही उसे विस्थापित करते हैं, जो नवजात शिशु का हनन करना चाहते हैं।''

''हमे दुरात्मा से त्राण मिले जो तेरी जंघा को विलग करता है, जो पति–पत्नी के बीच बाधा बनता है, जो तेरी कोख में प्रविष्ट होता है। बीज–हरण करता है। हमें उस दुरात्मा से त्राण मिले, जो भ्राता अथवा पति इतर प्रियतम के रूप में तुझ तक पहुंचता है और गर्भपात करना चाहता है।''

''हमे दुरात्मा से त्राण मिले जो तुझे नींद या अंधेरे में छल लेता है, तुझ तक आकर गर्भपात कर देता है।''

वेदों में दो चीजे हैं, पहली यह कि उनमें ऋषियों की आशाएं और आकांक्षाएं समाविष्ट जैसा कि म्यूर ने कहा है:

''इस पूरी रचना का स्वरूप और इनसे प्राप्त प्रमाणों के अनुसार जिन परिस्थितियों में ये रचे गए, उनसे पता चलता है कि आदि कवियों के सहज रूप में व्यक्तिगत अभिलाषा और मनोभावों का प्रकटीकरण था जिन्होंने सर्वप्रथम इन्हें गाया था। इनमें आर्य ऋषियों ने अपने प्राचीन देवताओं की तरह तरह से स्तुति गाई और उन्हें संतुष्ट होने का आह्‌वान किया। ऐसे अनेक वरदान मांगे, जिनकी मानव मात्र को लालसा होती है, जैसे स्वास्थ्य, सम्पदा, चिरायु, पशुधन, संतति, शत्रु–विजय, पाप–मुक्ति और शायद स्वर्ण सुख भी।''

यही दृष्टिकोण निरूक्त के लेखक यास्क का भी है, जो कहते हैं:

(''पूर्वोक्त खंड में चार प्रकार की ऋचाएं हैं) (क) जो देवता की अनुपस्थिति में संबोधित है, (ख) जिनमें उसको समक्ष जानकर संबोधन किया गया है, (ग) जिनमें आराधक को उपस्थित और आराध्य को अनुपस्थित माना गया है। वे अत्यधिक हैं। (घ) जबकि, जो स्वगत हैं, वे विरले ही हैं। ऐसा भी हुआ है कि देवता की प्रशंसा बिना वरदान कामना के लिए की गई है। जैसे कि मंत्र (ऋग्वेद) 1.32 ''मैं इन्द्र के शौर्य का वर्णन करता हूं।'' आदि। फिर बिना स्तुति किए वरदान की कामना की गई है, जैसे ''मैं अपने चक्षुओं से अच्छा देखूं, मेरा मुख कांतिमान हो और कानों से भली भांति सुनूं।'' ऐसा अथर्ववेद (यजुर) और बलि सूत्रों में बार–बार कहा गया है। फिर इसमें हम शपथ और शाप भी पाते है। (ऋग्वेद 7.104,15) ''यदि मैं यातुधान हूं तो आज ही मैं मर जांऊ'' आदि। फिर हम पाते हैं कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों को दर्शाने वाले मंत्र (ऋग्वेद दस, 129,2) 'तब मृत्यु नहीं थी न अमरतत्व आदि। कुछ स्थितियों में विलाप भी उपलब्ध है, जैसे कि मंत्र (ऋग्वेद दस 95, 14) ''रूपवान देवता प्रस्थान करेगा और अब कभी नहीं लौटेगा आदि। कहीं लांछन और प्रशंसा है, जैसा कि (ऋग्वेद, दस, 117,6) ''वह व्यक्ति जो अकेला पाप–कर्म करता है आदि''। द्यूत क्रीड़ा के विषय में मंत्र है (ऋग्वेद 10, 34, 13) जिसमें द्यूत क्रीड़ा की निंदा की गई है और कृषि की प्रशंसा। इस प्रकार जिन उद्देश्यों से ऋचाओं की सृष्टि हुई, वे विविध प्रकार की है।''

सूक्त 12 (155 वां)

देव, राजयक्ष्मा का उपचार है, ऋषि है कश्यपपुत्र विव्रीहन, छंद अनुष्टप् है।

1. मैं तेरी आंखों, तेरे शीर्ष, तेरी नासिका, तेरे कर्ण, तेरी ठोड़ी, तेरी मानस, तेरी जिह्‌वा का रोगहरण करता हूँ।

2. मैं तेरी ग्रीवा, तेरी शिराओं, तेरी अस्थियों, तेरे संधिक्षेत्र, तेरी बाहुओं, तेरे स्कंधों और तेरी कलाइयों का रोगहरण करता हूँ।

3. मैं तेरी अंतड़ियों, तेरी गुदा, तेरे उदर, तेरे वृषक, तेरे यकृत, और तेरे अन्य अंतरंग रोगहरण करता हूँ।

4. मैं तेरी जंघाओं, तेरे घुटनों, तेरी एड़ियों, तेरे पैर के पंजों, तेरी कटि, तेरे नितम्बो और तेरे गुप्तांगों का रोगहरण करता हूँ।

5. मैं तेरे मूत्रमार्ग, तेरे मूत्राश्रय, तेरे बालों, तेरे नखों और तेरी पूरी देह का रोगहरण करता हूँ।

6. मैं तेरे प्रत्येक अंग, प्रत्येक बाल, प्रत्येक जोड़, जहां भी वह उत्पन्न हो, तेरी पूरी देह का रोगहरण करता हूँ।

जैसा कि प्रोफेसर विल्सन समझते हैं, ऋग्वेद (सबसे विशाल ग्रंथ) में छलनी से मुश्किल से कोई ऐसा उदाहरण मिलेगा जिससे प्रकट होता हो कि उसमें कोई सैद्धांतिक अथवा दार्शनिक विवेचन है। उसमें विभिन्न परवर्ती सिद्धांतों का संकेत ही नहीं, उसमें पुनर्जन्म की ओर भी कोई इंगित नहीं है, न इससे संब; किसी अन्य सिद्धांत का, न ही विश्व की बार–बार सृष्टि का। आर्यों के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालने के लिए वेदों में पर्याप्त सामग्री मिलती है। इसके लिए वे उपयोगी हो सकते हैं। यह आदिम जीवन का चित्रण है। उनमें प्रगति का कोई प्रसंग नहीं, उनमें दोष अधिकांश और गुण न्यूनतम है।

वेदों के सार और विषयवस्तु को देखते हुए यह आश्चर्यजनक है कि ब्राह्मण क्योंकर इस अंधविश्वास को संशयरहित मानते हैं।

यदि मंत्र–सृष्टा ऋषि स्वयं दावा करते तो संशयरहित होने के सिद्धांत का कोई औचित्य ठहराया जा सकता था। किन्तु यह स्पष्ट है कि ऋषियों ने ऐसा आडम्बर नहीं रचा। इसके विपरीत उन्होंने कई बार जिज्ञासा–स्वरूप अपनी अज्ञता को स्वीकार किया है। ऋग्वेद के निम्नांकित मंत्र उनकी भावना के प्रतीक हैं:

''अज्ञ हूं, मेरे मानस (ज्ञान) से परे हैं, मैं देवताओं का अज्ञात आवास जानना चाहता हूं, ऋषि ने अपना जनेऊ बछड़े के खुर तक खींचा।'' (6. अज्ञ (हूं) मैं उन ऋषियों से पूछता हूं जिन्हें इस विषय में ज्ञान है, अनजान (मैं पूछता हूं) कि मैं जानू कि अजन्मों के रूप में क्या है जो इन छह लोकों को कैसे सँभालते हैं?) 37. मुझे पता नहीं कि मैं ऐसा हूं, मुझे आश्चर्य होता है कि मेरा ज्ञान सीमित है, जब बलि से प्राप्त प्रथम पुत्र (सत्य) मुझे प्राप्त हुआ, तब मैं उसे शब्द का आनन्द लेता हूँ।''

''वन क्या थे, वृक्ष क्या थे, उन्होंने जिससे स्वर्ग और पृथ्वी बनाई, जो अब तक अक्षर विद्यमान है, कितने दिन, कितने प्रातः बीत चुके हैं?''

''इन दोनों स्वर्ग और धरा में से कौन पहला है? कौन अंतिम हैं? ये कैसे उत्पन्न हुए? हे ऋषि, कौन जानता है?''

''कितनी अग्नियां हैं? कितने सूर्य हैं? कितने सवेरे हैं? कितने जल हैं? पिता, मैं तुमसे उपहास नहीं कर रहा हूं। मैं ऋषि सचमुच पूछ रहा हूं जिससे मैं जान सकूं।'' 5. ''वहां किरणें तिर्यक फैलती हैं, यह नीची हैं अथवा ऊंची? वहां जनन शक्ति थी और महान शक्तियां थीं प्रयत्न स्वाध्याय नीचे है या ऊपर 6. कौन जानता है यह किसने बनाया है? यह सृष्टि कब हुई? कहां से आई? परमात्मा इस ब्रह्मांड की सृष्टि के पश्चात जन्मा और कौन जानता है यह कब रची गई? क्या किसी ने इसकी रचना की? अथवा नहीं? जो सर्वोच्च स्वर्ग में रहता है, उसने यह ब्रह्मांड रचा। यह सचमुच जानता है अथवा नहीं?''

इस अमोघता या संशयरहित सिद्धांत के बारे में कुछ अन्य बिंदु भी हैं, जिन पर ध्यान देना जरूरी है।

IV

प्रथम प्रश्न यह है कि यह मान्यता मौलिक है अथवा भारत के इतिहास में कालातीत में जड़ दी गई। सामान्यतः यह मत प्रकट किया जाता है कि यह एक मूलभूत सिद्धांत है। सर्वप्रथम धर्मसूत्रों में इस विषय पर प्रकाश डाला गया है जो सर्वप्रथम विधिग्रंथ है। उनका संकेत है कि यह विकास सही नहीं है। वेदों की संशयहीनता के संबंध में गौतमधर्म सूत्र ने निम्नांकित नियम प्रतिपादित किए हैं :

''वेद पवित्र विधान के उद्‌गम है'' 1.1.

''और उनकी परम्पराएं तथा रीतियां जो (वेदों को) जानते हैं''– 1.2.

''यदि समान (अधिकारों वाली) शक्तियों के बीच संघर्ष हो किसी एक का अनुसरण करें, सुखी रहें'' – 1.4.

वशिष्ठ धर्म सूत्र का विचार इस प्रकार है:

''पवित्र विधान पाठों और ऋषि परम्पराओं से निर्धारित किए गए हैं''– 1.4.

''(नियमों के अनुसार) निश्चय न हो पाने पर इन (दो

सूत्रों) शिष्टों की सत्ता सर्वोपरि है।''– 1.5.

''जो कामनारहित हैं शिष्ट (कहलाते हैं)–1.6.

बौधायन का मत निम्न प्रकार हैः (प्र. 1, अध्या 1 कंडिका 1)

1. प्रत्येक वेद में पवित्र नियमों की शिक्षा है।

2. हम उसके अनुसार व्याख्या करेंगे।

3. (पवित्र विधान) की शिक्षा परम्पराओं में है। (स्मृति का दूसरा स्थान है।)

4. शिष्टों के व्यवहार का तीसरा स्थान है।

5. शिष्ट निःसंदेह (वे हैं) जो निस्पृह 'ईर्ष्या से मुक्त' दर्प से मुक्त, मात्र दस दिन के लिए अन्न–संग्रह से संतुष्ट होते हैं, लोभ से मुक्त, पाखण्ड, अज्ञान, स्वार्थ, अनिश्चय बुद्धि तथा क्रोध से रहित हैं।

6. जो शिष्ट (कहलाते हैं) जिन्होंने पवित्र विधान के अनुसार वेद–वेदांग का अध्ययन किया है, जो जानते हैं कि इनसे किस प्रकार संदर्भ के लिए जाएं, मान्य पाठ से भावानुकूल साक्ष्य प्रस्तुत कर सके।''

7. उनके विफल हो जाने पर न्यूनतम दस सदस्यों की सभा (विधान के विवादित प्रश्नों पर निर्णय दें)

8. अब वे उद्धत करते हैं (निम्नांकित मंत्र): ''चार पुरूष, उनमें से प्रत्येक किसी वेद मीमांसा का ज्ञाता हो, वेदांग को जानता हो, जो पवित्र विधान का वाचन करें, एवं विभिन्न तीन सिद्धांतों के अनुयायी, तीन ब्राह्मणों की मिलकर एक सभा बनती है, जिसमें न्यूनतम दस सदस्य हों।''

9. इसमें पांच अथवा तीन अथवा एक निर्विवाद व्यक्ति हो सकता है जो (सम्बद्ध प्रश्न पर) पवित्र विधान के अनुकूल निर्णय करें। किन्तु एक हजार मूर्ख मिलकर भी निर्णय नहीं कर सकते।

10. काष्ठ निर्मित हाथी, चमड़े से बना मृग, अशिक्षित ब्राह्मण इन तीनों में कुछ नहीं होता, ये दर्शनीय पदार्थ हैं।

आपस्तम्ब धर्म सूत्र द्वारा लिया गया दृष्टिकोण स्पष्ट है जो निम्न सूत्र से लिया गया हैः

''हम अब बताएंगे कि गुणकर्म क्या है? जो दैनिक जीवन के व्यवहार का अंग बनते हैं।'' 1.1.

''इन अधिकारों (उपरोक्त कर्तव्य पालन के) को सहमति (समझौता) कहते हैं जो विधि को समझते हैं''। 1. 2.

''और (शीर्ष अधिकारी) मात्र वेद हैं।'' 1.3.

धर्मसूत्रों का विवेचन प्रकट करता है कि वेदों की संशयहीनता की मान्यता एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। इससे प्रदर्शित होता है कि विवाह की बात पर इनमें से किये संशयरहित माना जाए? 1. वेद, 2. परंपरा (स्मृति), 3. शिष्टों के व्यवहार, 4. सभा में समझौता, ये चार अधिकार केन्द्र थे। इससे यह पता चलता है कि एक समय था, जब मात्र वेद ही असंदिग्ध सत्ता नहीं थे। यह समय वशिष्ठ और बौधायन के धर्मसूत्रों का काल था। गौतम के काल में ही वेदों की एकछत्र सत्ता स्थापित हुई। एक ऐसा समय भी था जब सभाा का निर्णय सत्ता का केन्द्र था। यह बौधायन का युग था। अंत में विवेचन से यह भी प्रकट होता है कि एक ऐसा समय था जब वेदों को अधिकार संपन्न ग्रंथ नहीं माना जाता था, बल्कि सत्ता का केन्द्र विद्वानों की सभा का निर्णय हुआ करता था। यह काल था, जब आपस्तम्ब ने अपने धर्मसूत्रों की रचना की अर्थात् ईसा से 600 से लेकर 200 वर्ष पूर्व तक।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेदों को जानबूझकर सनातन बनाने का प्रयास किया गया। जिनको पहले ऐसा नहीं माना जाता था। अब प्रश्न यह है कि वे कौन सी परिस्थितियां और क्या इरादे थे, जिनके अनुसार ब्राह्मणों ने यह प्रचारित किया कि वेद एकछत्र और परमसत्ता के केन्द्र हैं।

वेदों की सनातनता से दूसरा सम्बद्ध प्रश्न यह है कि ब्राह्मणों ने भेदभाव क्यों बरता और वेदों के कुछ अंशों तक ही संशयहीनता का सिद्धांत क्यों लागू किया? पूरे वैदिक साहित्य को इस श्रेणी में क्यों नहीं रखा? इस प्रश्न को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वैदिक साहित्य का क्या अर्थ है? 'वैदिक साहित्य' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हैं। उसके अंग हैं– (1) संहिता, (2) ब्राह्मण, (3) आरण्यक, 4. उपनिषद और (5) सूत्र। जब इसका विस्तृत अर्थ किया जाता है तो इसमें दो अंग और जुड़ जाते हैं। 6. इतिहास, और 7. पुराण।

पहली बात ध्यान में यह रखनी चाहिए कि एक समय था जब यह सारा साहित्य एक ही श्रेणी में आता था और इनके बीच उद्घाटित अथवा लौकिक, अलौकिक अथवा मानवीय, तथा प्राधिकृत अथवा अप्राधिकृत के आधार पर कोई भेद नहीं था। यह बात शतपथ ब्राह्मण से स्पष्ट है, जो कहता हैः

''पुरूष प्रजापति की इच्छा हुई कि ''मेरी अभिवृद्धि हो, मेरा विस्तार हो''। वे समाधिस्थ हो गए, उन्होंने घोर तप किया। इस तप से उन्होंने त्रिवेद विज्ञान–प्रज्ञा की रचना की। यह उनका आधार बना। उन्होंने कहा– 'प्रज्ञा ब्रह्मांड का मूल्य है'। वेदों के ज्ञान के पश्चात पुरूष को आधार बना। उन्होंने कहा– –प्रज्ञा ब्रह्मांड का मूल्य है'। वेदों के ज्ञान के पश्चात पुरूष को आधार मिला कि प्रज्ञा उसका मूल हैं। इस आधार पर प्रजापति ने घोर तप किया। (9) उन्होंने वाच से जल की रचना की। उसके विस्तरण से जल ''अप्प'' कहलाया। उसकी सर्वत्र व्यापकता से वह ''वारि'' बना। (10) उन्होंने चाहा, ''मेरा जल से विस्तार हो''। इस त्रिवेद विज्ञान से वे जल से प्रविष्ट हुए, तब एक अण्डज उभरा। उन्होंने उसे प्राणवान किया और कहा, ''भव भव पुनर्भव''। तब प्रज्ञा का जन्म हुआ। त्रिवेद विज्ञान। फिर पुरूष ने कहा, 'प्रज्ञा ब्रह्मांड की प्रथम सृष्टि है। पुरूष के समक्ष सर्वप्रथम प्रज्ञा की रचना हुई। इसलिए यह उसका मुख बनी। इस प्रकार आगे वह कहते हैं ''वह अग्नि के समान हैं क्योंकि प्रज्ञा अग्नि का मुख है।

''आर्द्र काठ से उपजी अग्नि उससे उठे भिन्न–भिन्न धुएं। उनकी श्वास प्रक्रिया से महान ऋग्वेद बना, यजुर्वेद बना, सामवेद बना, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विज्ञान, उपनिषद, श्लोक, सूत्र विभिन्न प्रकार के भाष्य बने। यह सब उसका श्वास बने।''

परन्तु जब ब्राह्मणों ने संशयरहित होने के सिद्धांत को स्थापित करने का मन बनाया तो उन्होंने वैदिक साहित्य को दो भागों में विभक्त कर दिया। 1. श्रुति और 2. अश्रुति। प्रथम विभाजन में उन्होंने आठ अंगों में से केवल दो को श्रेष्ठ रखा। संहिता और ब्राह्मण, शेष को उन्होंने अश्रुति घोषित कर दिया। यह बताना संभव नहीं कि यह अंतर कब उत्पन्न हुआ परन्तु यह प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण है कि किस आधार पर यह भेद किया गया। आरण्यक और उपनिषद् क्यों छांट कर बाहर कर दिए गए? पहले समझा जा सकता है कि इतिहास और पुराणों को श्रुति से क्यों वंचित किया गया? जिस समय यह भेद किया गया, तब वे इतने आरम्भिक और अविकसित थे कि उन्हें शायद ब्राह्मणों में सम्मिलित कर लिया गया।

साथ ही यह बात भी समझ में आती है कि आरण्यकों का श्रुति के अंग के रूप में उल्लेख क्यों नहीं किया गया? ये ब्राह्मणों के अंग थे और शायद इसी कारण यह उल्लेख करना आवश्यक था कि यह श्रुति का अंग हैं, उपनिषद और सूत्रों का प्रश्न एक पहेली ही बना हुआ है। इन्हें श्रुति से अलग क्यों रखा गया? परन्तु सूत्रों का मामला अलग है। वे श्रुति की श्रेणी से निश्चित रूप से विलग कर दिए गए जिसको समझना बुद्धि से परे है। यदि यह बात तर्कसम्मत है कि ब्राह्मणों को श्रुति में सम्मिलित किया जाना चाहिए, उसी कसौटी पर यह बात खरी नहीं उतरती कि सूत्रों को शामिल क्यों न किया जाए? जैसा कि प्रोफेसर मैक्समूलर कहते हैंः

''हम इस बात को समझ सकते हैं कि किस प्रकार कोई देश अपनी राष्ट्रीय काव्य रचना का श्रेय किसी अलौकिक पुरूष को दे सकता है? विशेष रूप से तब, जबकि उस काव्य में देवों को सम्बोधित प्रार्थनाए और मंत्र समाविष्ट हों। परन्तु ब्राह्मण ग्रंथों के गद्य–साहित्य के विषय में यह कहना कठिन है। ब्राह्मण ग्रंथ स्पष्ट रूप से मंत्रों की अपेक्षा बाद की रचनायें हैं। इसी कारण इन्हें श्रुति में समाहित किया गया होगा कि इनकी सामग्री ब्रह्मज्ञान युक्त है। ब्राह्मण ग्रंथों के अधिकांश दावों के बारे में यह कल्पना की गई होगी कि इसकी रचना दैवी है, जिनका उद्गम सामान्य पद्य अथवा मंत्र नहीं हो सकते। किन्तु हमें इस तर्क को मान्यता देने की आवश्यकता नहीं, जिसके कारण ब्राह्मण–ग्रंथों ने अपने को मंत्र–रचना के समकालीन माना है। इसका कोई कारण समझ में नहीं आता कि ब्राह्मण ग्रंथों और मंत्रों का रचनाकाल अधिक प्राचीन है। तो हम इस सहज विचार को क्यों अस्वीकार कर दें कि यदि सूत्रों और भारत के लौकिक साहित्य की तुलना की जाए तो उनका महत्व समान बनता है। ऐसी घटना सामान्य है जहां पवित्र ग्रंथों का यह नियम है कि बाद की रचनाओं को प्राचीन रचनाओं से जोड़ दिया जाता है, जैसा कि ब्राह्मण ग्रंथों के साथ हुआ। किन्तु हम कठिनाई से ही यह कल्पना कर सकते हैं, जब कोई पक्ष इन तिरस्कृत रचनाओं के सिद्धांत विशेष की प्रामाणिकता अमान्य घोषित करने के लिए प्रयत्नशील न हो, पुराने अंशों को पवित्र रचनाओं से हटा दिया जाए और उन्हें बाद की रचनाएं बना दिया जाए। सूत्रों के परवर्ती साहित्य में ऐसा कुछ नहीं है। ऐसी कल्पना का कोई आधार नहीं है। हमें ब्राह्मण और मंत्रों की अपेक्षा उनके परवर्ती होने के

सेवा में,

नाम श्री.....

पता .....

.....

.....

सिवाय ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि सूत्रों को श्रुति न बनाया जाए। क्या ब्राह्मण ग्रंथकारों को स्वयं ज्ञात था कि ऋषियों की अधिकांश रचनाओं और ब्राह्मण ग्रंथों के उद्भव तक युगों बीत चुके थे? इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, किन्तु जिस दुस्साहस के साथ भारत के ब्रह्मज्ञानियों ने ब्राह्मण–ग्रंथों को वही पद और मंत्रों के समान उनका काल–निर्धारण किया, उससे यह प्रकट होता है कि इसका कोई विशिष्ट कारण रहा होगा कि सूत्रों को उतनी ही पावनता और प्रामाणिकता न दी जाए।''

तीसरा प्रश्न उन परिवर्तनों से संबद्ध है जिसके अनुसार श्रुति और उनकी संशयहीनता की श्रेणी निर्धारित हुई। मनु ने 'ब्राह्मणो' को श्रुति की श्रेणी से अलग कर दिया जैसा कि उसकी स्मृति से स्पष्ट हैः

''श्रुति का अर्थ है, वेद और स्मृति का अर्थ है विधान, इनकी विषय–सामग्री पर तर्क नहीं किया जा सकता क्योंकि इनमें कर्तव्य–बोध है। वे ब्राह्मण, जो बुद्धिवादी लेखों पर आधारित हैं, वे ज्ञान के इन दो स्त्रोतों की निंदा करेंगे, उन्हें संशयवादी और निंदक जानकार बहिष्कृत किया जाए। जो कर्तव्य–बोध चाहते हैं, उनके लिए श्रुति सर्वोच्च सत्ता है।''

चौथा प्रश्न पुराणों के उस दावे से संबंधित है, जो पुराणों को रचना की दृष्टि से वेदों से उच्च स्थान देता है। वायु पुराण का कथन हैः

''सर्वप्रथम सभी शास्त्र, पुराण ब्राह्मण के मुख से प्रस्फुटित हुए। तदुपरान्त उनके मुख से वेद।'' मत्स्य पुराण वेदों से केवल पूर्ववर्ती होना ही घोषित नहीं करता बल्कि वह उनकी गुणवत्ता, सनातनता और स्वर के साथ पहचान को भी श्रेष्ठ मानता है। पहले केवल वेदों को इन गुणों से सम्पन्न कहा गया था। वह कहता हैः

''सर्वप्रथम, अविनाशी पितामह (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए, फिर वेद, उसके अंगोपांग तथा उनके पाठ के विभिन्न साधन जन्में और प्रकट हुए। ब्रह्मा ने जिन शास्त्रों का प्रस्फुटन किया उनमें सहस्त्रों कोटि मंत्रों के विस्तृत आयाम वाले शाश्वत ध्वनि जनित शुद्ध शास्त्र, पुराण प्रथम थे जो शुरू के जाप से जन्मे, फिर वेदों का उद्गम हुआ। तभी मीमांसा और न्याय और अन्य प्रमाण जन्में 5. उनसे (ब्रह्मा) जो वेदों के अध्ययन में आस्थावान थे, संतति के इच्छुक थे उनके मानस–पुत्र जन्मे। वे इस कारण मानस–पुत्र कहलाए कि सर्वप्रथम उनके मानस से प्रस्फुटित हुए थे।''

भागवत पुराण वेदों के समान प्रामाणिकता का दावा करता है–

''ब्रह्मरात्र का निर्णय है कि पुराण भागवत कहलाता है, जो वेदों के समान हैं।''

''ब्रह्मवैवर्त पुराण ने स्पष्टतः दावा किया है वह वेदों से श्रेष्ठ है। वह कहता हैः

''जिस श्रद्धेय ऋषि के विषय में आपने प्रश्न किया है और जो आपकी इच्छा है, पुराणों का सार अति विख्यात ब्रह्मवैवर्त पुराण है जो समस्त पुराणों और वेदों की त्रुटियों का परिष्कार करता है इसको मैं जानता हूं।''

इस निरूपण से वेदों के संबंध में अनेक पहेलियां उपजती है। यह तीन पहेलियां तो है ही कि.....ब्राह्मण इस बात पर क्यों बल देते हैं कि वेदों की सत्ता सनातन है, कि वे अपौरूषेय और बिना किसी देवता के उत्पन्न हुए और वे संशयरहित है। इसके अतिरिक्त, वेदों के विषय में एक और पहेली है कि एक समय वेदों की कोई सत्ता नहीं थी और ना ही वे संशय–रहित थे। ब्राह्मणों को, इस बात की आवश्यकता क्यों अनुभव हुई कि उन्हें संशयरहित घोषित करें। ब्राह्मणों ने सूत्रों को श्रुति को श्रेणी से क्यों विलग किया? ब्राह्मणों ने वेदों के संशय–रहित होने के सिद्धातं को क्यों किनारे कर दिया और पुराणों को वह स्थान दे डाला?

साभार – बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–8
पृष्ठ सं. 137 से 158
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर